RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

वर्ष : 4, अंक : 13

अप्रैल–जून 2019

मूल्य 50 रुपये

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका– शिवना प्रकाशन साहित्य समागम एवं सम्मान समारोह

भोपाल मध्यप्रदेश के राज्य संग्रहालय के सभागार में 17 मार्च 2019 को आयोजित "ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका-शिवना प्रकाशन साहित्य समागम तथा सम्मान समारोह" में शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट की पुस्तकों का विमोचन किया गया।

रेखाएँ बोलती हैं - (गीताश्री), मेरा दावा है - (सुधा ओम ढींगरा), 51 किताबें ग़ज़लों की - (नीरज गोस्वामी)

बारह चर्चित कहानियाँ - (सुधा ओम ढींगरा, पंकज सुबीर), विमर्श दृष्टि - (पंकज सुबीर), यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं - (पंकज सुबीर)

वक़्त की गवाही - (बुधराम यादव), दो ध्रुवों के बीच की आस- (डॉ. गरिमा संजय दुबे), सरला मैडम के मिस्ड कॉल - (डॉ. कमल चतुर्वेदी)

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, कारण और निवारण- (शहरयार अमजद ख़ान), # मी-टू - (आकाश माथुर), प्रेम पॉलिटिक्स - (प्रसन्न सोनी)

कुबेर - (डॉ. हंसा दीप), इस समय तक - (धर्मपाल महेन्द्र जैन), पार्थ तुम्हें जीना होगा 'चतुर्थ संस्करण' - (ज्योति जैन)। इस अवसर पर फ़िल्म निर्देशक श्री इरफ़ान ख़ान की नई फ़िल्म शरद पूर्णिमा का पहला पोस्टर भी जारी किया गया, जिसके लेखक पंकज सुबीर हैं।

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष)
3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंगकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 4, अंक : 13, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2019
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

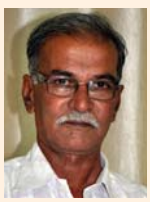

आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा बब्बल गुरु

रेखाचित्र
अनुभूति गुप्ता

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 4, अंक : 13, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2019

संपादकीय 5
मित्रनामा 7
साक्षात्कार
रामदेव धुरंधर से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 10
कथा कहानी
मेरी तीन कसमें ...
हर्ष बाला शर्मा 14
हरा पत्ता पीला पत्ता
डॉ. हंसा दीप 18
शेरा और मैं
उमेश अग्निहोत्री 20
शीशों में बंद ज़िंदगी
मंजुश्री 26
आप क्यू में हैं.....
चौधरी मदन मोहन समर 30
....कि तुम मेरी ज़िंदगी हो
डॉ. पूरन सिंह 36
लघुकथाएँ
गिरगिट
सुमन कुमार 29
रसायन
डॉ. विनोद नायक 43
व्हेन करैक्टर इज लॉस्ट
सुभाष चंद्र लखेड़ा 49
व्यंग्य
भैंस उसी की - लाठी जिसकी
पूरन सरमा 40
पुस्तक-महाकुम्भ पर नारदीय रपट
कमलेश पाण्डेय 42
शहरों की रूह
एक सुनियोजित व सुरक्षित शहर - कोपनहेगन
अर्चना पैन्यूली 44
संस्मरण
तुम्हारा शिष्य, हमारे पाले में आ गया है!
ज़हीर कुरेशी 47
आलेख
दो बहनों की कथा
(एक पत्रिका के दो नाम : शमा-सुषमा)
डॉ. अफ़रोज़ ताज 50
ग़ज़लें
हमीद कानपुरी 41
जय चक्रवर्ती 69
कविताएँ
डॉ.अमरेंद्र मिश्र 57
पंकज त्रिवेदी 58
शैलेन्द्र शरण 59
राजेन्द्र नागदेव 60
डॉ. संगम वर्मा 61
शिव कुशवाहा 62
नंदा पाण्डेय 63
सलिल सरोज 64
नीलम पांडेय नील 66
गीत
संदीप 'सरस' 67
भाषांतर
अतिया दाऊद
अनुवाद : देवी नागरानी 68
नव पल्लव
अदिति मजूमदार 69
समाचार सार
स्पंदन सम्मान समारोह 70
सुबह अब होती है, अब होती है मंचित 70
काव्यसंग्रहों का विमोचन 71
ओटावा में विश्व हिंदी दिवस 71
पावस व्याख्यान माला 72
'सृजन संवाद' 72
एक शाम अशोक मिज़ाज बद्र के नाम 72
वैश्विक हिंदी सेवा सम्मान 72
पुरोधा संपादकों की कहानी 72
'यह भी खूब रही' का विमोचन 72
''पत्रकारिता कोश'' 73
महाराजा सयाजीराव लोक भाषा सम्मान 73
'मन्नत टेलर्स' का लोकार्पण 73
''लेखकों की दुनिया'' 73
'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार' 73
विश्व हिंदी दिवस समारोह 73
आख़िरी पन्ना 74

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :

1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :_____ **डाक का पता :**_____

_____ **सदस्यता शुल्क :**_____ **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**_____

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांसफ़र किया है) :_____ **दिनांक :**_____

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऐसी साइट्स या इन पर छपने वाले लेखक हिन्दी साहित्य का कितना भला कर रहे हैं!

अनुसरण और भेड़चाल आम लोगों में तो यह मानसिकता पनपते देखी है, पर अब देशों और राजनीतिज्ञों भी में ये प्रवृत्तियाँ लोकप्रिय होने लगी हैं। ऐसा देख और सुन कर ताज्जुब होता है। वोट के लिए ग़रीब जनता या आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों को मुफ्त की सुविधाएँ या आर्थिक सहायता देना देश और समाज की लिए अहितकारी है। इससे काम करने की इच्छा और क्षमता दोनों समाप्त हो जाती हैं। आसान ज़िंदगी कौन नहीं जीना चाहता ! पीढ़ी दर पीढ़ी अकर्मण्यता हावी हो जाती है। जिन देशों में ऐसा किया गया है, उन देशों में कई पीढ़ियाँ काम नहीं करना चाहतीं। बस सरकारी भत्तों पर जीना चाहती हैं।

अमेरिका इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। यहाँ के वैलफ़ेयर और फ़ूड स्टैम्प्स के दुरुपयोग पर मैंने कहानी 'सूरज क्यों निकलता है....?' लिखी थी। वैलफ़ेयर और फ़ूड स्टैम्प्स का सिस्टम जो कभी ग़रीबों की सहायता और ग़रीबी पर विजय पाने के लिए शुरू किया गया था, अब देश को कंगाल कर रहा है। मेहनती लोगों के टैक्स का पैसा इस सिस्टम पर खर्च हो रहा है और इससे कामचोरों को बढ़ावा मिल रहा है । दुखदाई बात है कि इस समस्या से निजात कभी नहीं मिल सकती; क्योंकि चुनाव में वोटों की बढ़ौतरी यहीं से होती है। बेहतर होता कि इस वर्ग को skills development के कार्य सिखाए जाते और उन्हें रोटी-रोज़ी के अवसर प्रदान किये जाते; जिससे एक वर्ग निठल्ला होने की बजाय मेहनती बनता।

रूस के पतन के बहुत से कारणों में एक कारण यह भी था कि सरकार की तरफ से मिली मुफ़्त की शिक्षा और अन्य सुविधाओं के चलते रूसी लोगों में जीवन जीने का उद्देश्य और प्रोत्साहन समाप्त हो गया था। वे शराब और नशों के तरफ बढ़ने लगे थे।

इटली , ग्रीक जैसे देशों के आर्थिक पतन से सबक लेने की बजाय पूरे विश्व के नेता और पार्टियाँ ग़रीबी रेखा से निचले तबके को मुफ़्त सुविधाओं का लॉली पॉप देकर वोट लेने की राजनीति कर रही हैं। इसके घातक परिणामों को कोई नेता या पार्टी देखना नहीं चाहती, बस उन्हें विजय चाहिए। इस विजय से कुछ वर्षों में वैश्विक पटल क्या होगा? समय ही उत्तर देगा....

अब मैं हिंदी साहित्य के एक ऐसे विषय पर बात करना चाहती हूँ , जिसने मुझे सोचने के लिए मजबूर कर दिया। पत्रिका के लिए ढेरों ईमेल्ज़ आती हैं, जिनमें कहानियाँ, कविताएँ और बहुत सी सामग्री होती है। कई युवा मुझे अपनी कहानी भेजने के साथ कुछ साइट्स भी

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

भेजते हैं और लिखते हैं कि हमें इतने हज़ार लोग पढ़ते हैं, और कई लिखते हैं लाखों लोग पढ़ते हैं और भेजने के तुरन्त बाद हमें ईमेल्ज़ आनी शुरू हो जाती हैं, हमारी कहानी पर क्या निर्णय लिया? अभी टीम को पूरी तरह सामग्री देखने का समय भी नहीं मिलता और वे कहानी किसी साइट पर डाल कर हमें लिखते हैं, देखिए! एक दिन में ही कितने लाइक्स आए हैं। इतनी अधीरता कि धैर्य से उस रचना को दोबारा देखते भी नहीं। हमने जिज्ञासावश उस कहानी को पढ़ा और जब उस कहानी को पढ़ा गया, तो लेखक क्या कहना चाहता है, समझ नहीं आया। वाक्य विन्यास, व्याकरण की ढेरों त्रुटियाँ। उस लेखक को समझाने की कोशिश की, इस पर थोड़ा काम कीजिए , कहानी बहुत अच्छी बन सकती है तो सुनने को यह मिला कि सभी पाठक उनकी बहुत तारीफ़ करते हैं। कभी किसी ने कुछ नहीं कहा। कहने का भाव था हम नाहक में त्रुटियाँ निकाल रहे हैं।

हर अंक से पहले कुछ इसी तरह के मिलते-जुलते अनुभव होते हैं। अब सोचने की बात है, ऐसी साइट्स या इन पर छपने वाले लेखक हिन्दी साहित्य का कितना भला कर रहे हैं! लघुकथा, कहानी, ग़ज़ल, गीत , नवगीत किसी का कुछ ज्ञान नहीं, पर धड़ाधड़ छप रहे हैं।

मानती हूँ कि परिवर्तन कालखंड के साथ चलता रहता है। साहित्य में भी परिवर्तन आ रहे हैं और आज का समय तो पूरी तरह से तकनीकी और प्रौद्योगिकी का है। पर इस परिवर्तन में साहित्य की आत्मा, मूल प्रवृत्ति तो छलनी नहीं होनी चाहिए। उसका अनुशासन तो कायम रहना चाहिए। बस इसी बात की चिंता है।

हालाँकि मुझे सोशल साइट्स, वेब पत्रिकाओं, ऑन लाइन पत्रिकाओं, वेब पोर्टल किसी से भी परहेज़ नहीं, मैं स्वयं हर जगह पर हूँ । बल्कि पूर्णिमा वर्मन जी की आभारी हूँ ; जिन्होंने सन् 2000 से लेकर अब तक प्रवासी साहित्य को अनुभूति-अभिव्यक्ति वेब पत्रिकाओं के द्वारा पूरी दुनिया में पहचान दिलवाई है। पर क्या मजाल कोई भी रचना संपादन, प्रूफ रीडिंग और संशोधन के बिना छप जाए। वेब पत्रिकाओं की भीड़ में आज भी इन दोनों पत्रिकाओं ने अपनी गरिमा बनाई हुई है।

आपका हमारा संवाद चलता रहेगा। मेरी सोच और चिंता पर आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार भी रहेगा।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

विभोम-स्वर, शिवना प्रकाशन तथा शिवना साहित्यिकी परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि

हिन्दी के शीर्ष आलोचक डॉ. नामवर सिंह, वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार कृष्णा सोबती जी और प्रखर आलोचक, गुणी संपादक अर्चना वर्मा जी का निधन हिन्दी साहित्य की अपूरणीय क्षति है। हिन्दी के साहित्याकाश पर चमचमाते हुए सितारों का अस्त हो जाना समूचे साहित्य जगत् के लिए कठिन समय को और कठिन कर देने के समान है। विभोम-स्वर, शिवना प्रकाशन तथा शिवना साहित्यिकी परिवार तीनों दिवंगत साहित्यकारों को नमन करते हुए अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

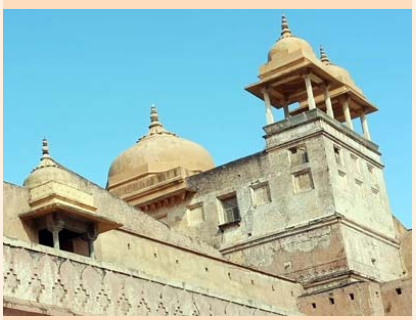

महलों को बनवाते समय राजाओं को कहाँ ज्ञात होगा कि एक दिन यह सब कुछ समय के हाथों खंडहर हो जाएगा। उनके गोपनीय से गोपनीय कक्षों में एक दिन पर्यटक चहलक़दमी करेंगे और चमगादड़ें निवास करेंगी। हम केवल वर्तमान को ही स्थिर मान कर चलते हैं, जबकि सब कुछ परिवर्तनशील होता है।

मित्रनामा

पत्रकारिता से ऊपर रचनात्मक

जनवरी-मार्च 2019 अंक पढ़ते हुए पत्र लिखने का मन हो गया। मैं अक्सर विभोम-स्वर पंकज सुबीर के 'आख़िरी पन्ना' को पढ़ते हुए शुरू करता हूँ। यहाँ हल्के-फुल्के अंदाज़ में कही गई भारी बातों का तेवर भाता है। इस बार अज्ञात सूत्रों के बहाने पंकज सुबीर ने हमारे समय की असुरक्षा की प्रवृत्तियों पर बेबाक बात की है। ''असुरक्षा यह कि हर जगह मैं उपस्थित रहूँ। हर किताब/विशेषांक में मेरी रचना हो। हर पुरस्कार, सम्मान में मेरा नाम हो। हर आयोजन में मंच पर रहूँ।'' इन अदमित इच्छाओं के चलते रचनाकार का रचनाकर्म गौण हो रहा है, वह लिखने के इतर अन्य काम प्राथमिकता के आधार पर कर रहा है।

पारुल सिंह की कहानी 'ऑरेंज कलर के भूत' नए कथ्य के साथ अंत तक प्रवाही और पाठक को बाँधे रखने वाली सहज और प्रभावी कहानी है। राहुल देव ने 'हिंदी साहित्य : परम्परा और युवा रचनाशीलता' के माध्यम से सामयिक प्रश्न उठाएँ हैं। स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के सामान्य हिंदी और हिंदी साहित्य के वर्तमान पाठ्यक्रमों के बारे में जागरूक विश्व-विद्यालयों को सोचना चाहिए। मैं यहाँ अमेरिकी और कैनेडियन विश्वविद्यालयों के सहायक पाठ्यक्रमों में शामिल अंग्रेज़ी की पाठ्यसामग्री को देखता हूँ तो पाता हूँ कि उनकी अधिकाँश सामग्री पिछले पाँच-दस वर्षों की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के संकलन से बनी होती है। आधुनिक और समकालीन लेखन को पाठ्यसामग्री का हिस्सा होना चाहिए। यदि भारतीय विश्वविद्यालय अपने भाषाई पाठ्यक्रमों में आधुनिक और समकालीन लेखन में 1960-1980 पढ़ाते हैं तो उनके पीठाधीशों को सेवानिवृत्त हो ही जाना चाहिए।

और आख़िर में सुधा ओम ढींगरा के सम्पादकीय पर। अपने कथेतर लेखन में सुधा जी ने यहाँ हमेशा की तरह इस बार भी वैश्विक मुद्दों पर विचारोत्तेजक लिखा है - 'जबसे अपना देश और अपनी नस्ल बचाओ भावना प्रबल हुई है, दुनिया के शोषितों, दलितों, पीड़ितों की पुकार किसी के कानों तक नहीं पहुँचती..... वे वहाँ ध्यान देना चाहते हैं जहाँ निवेश है, बाज़ार है।' यह हमारी सभ्यता के अब तक के श्रेष्ठ समय की त्रासदी है। तात्कालिक सुर्खियाँ बटोरने वाली पत्रकारिता से ऊपर उठ कर रचनात्मक होने और 'विभोम-स्वर' होने के लिए बधाई।

-धर्मपाल महेंद्र जैन, टोरंटो
dharmtoronto@gmail.com

***

सम्पूर्णता का एहसास

विभोम-स्वर का अंक प्राप्त हुआ यद्यपि इसकी सूचना पूर्व में ही आपने मेल पर दे दी थी साहित्य की सभी प्रचलित विधाओं को समेटे पत्रिका अपने आप में एक सम्पूर्णता का एहसास कराती है निश्चय ही आपके प्रयास स्तुत्य हैं। पत्रिका में मेरे गीतों को स्थान मिला है इसके लिए पुनः हृदय से धन्यवाद।

-जयप्रकाश श्रीवास्तव
jaiprakash09.shrivastava@gmail.com

***

विचारोत्तेजक संपादकीय

राष्ट्रवाद की भावना या विचार से क्या लाभ है ग़रीबों को ? ग़रीबों का तो इस लोकतंत्र से भी कुछ भला नहीं हुआ विगत सत्तर सालों में। सभ्यताओं के विकास के साथ- साथ जिस तरह से सामाजिक और आर्थिक ढाँचे बदले और अमीर- ग़रीब के बीच असमानताओं की खाई गहरी और चौड़ी होती गई, ग़रीब को अमीर हिक़ारत की नज़र से देखने लगे और समाज में तमाम तरह की विषमताओं और भेदभाव का प्रचलन बढ़ गया और राजतंत्र का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें उच्च और निम्न की कई कोटियाँ पैदा हुई और ग़रीब के शोषण की लम्बी परम्परा चली।

फिर राजतंत्र और उपनिवेशवादी साम्राज्यों का अन्त हुआ और लोकतांत्रिक व्यवस्था का शुभारंभ हुआ पर ज़ल्द ही हमारे लोकतंत्र को स्वार्थी राजनेताओं ने गुमराह करना शुरू कर दिया। भारत की ग़रीब जनता अपनी आज़ादी का असली लुत्फ़ उठाने में नाकामयाब रही, पर सत्ता लोलुप और सुविधा भोगी सरकारें पूँजीवाद के बाज़ार में लोकतंत्र और ग़रीबों के सपनों को नीलाम करते रहे और जन - जन को ठगते रहे। सरकारें 'विकास' के नाम पर अमीरों की जेबें भरने लगीं। कम्यूनिज़्म ने एकरूपता और समता से भरे समाज का जो सपना दिखाया था, वो भी एक खास कालखण्ड के बाद निरर्थक और झूठ ही साबित हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रूस और चीन में कम्यूनिज़्म (साम्यवाद) का जो सपना देखा गया वह सपना कुछ अरसे बाद धुँधलाने लगा और यहाँ भी तस्वीरें बदल गईं।

आमजन हर देश में हाशिये पर हैं, किसान- मज़दूर हाशिए पर हैं और पूँजीवादियों की तोंद फूलती जा रही है। लगभग हर एशियाई देश की तरह भारत में भी विकास और परिवर्तन का ढ़ोल पीटती सरकारें बनीं पर आमजन आज भी पूरी तरह से खुशहाल नहीं हैं।

दो वक़्त की रोटी जुगाड़ने की जद्दोजहद के बीच हम अपने अधिकारों के लिए लड़ने का वक़्त नहीं निकाल पाते और इसी का लाभ सत्ताधारी उठाते रहे हैं। पश्चिमी देशों की तरह यहाँ भी ग़रीबों की सहायता के लिए सरकारी योजनाएँ हैं पर प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण किसी भी योजना का आंशिक लाभ ही आम जनता तक पहुँच पाता है। लेकिन इस भ्रष्टाचार के खिलाफ खड़े होने या लड़ने का जज़्बा सिरे से नदारद है।

हमारे देश में भी रोज़मर्रा की चीज़ों के दाम बहुत तेज़ी से बढ़ते जा रहे हैं और पूँजीपतियों की प्रगति हो रही है। विश्व भर में सरकारें जनता को रंगभेद/जातिभेद/ नस्लवाद /युद्ध आदि में फँसाए रखना चाहती हैं ताकि असली मुद्दों की चर्चा ही न हो सके। दलितों,शोषितों,पीड़ितों और विस्थापितों की पुकार आज विश्व भर में अनसुनी हैं और पूँजीवादियों के आधिपत्य का डंका चहुँ ओर बज रहा है।

बड़ी ही त्रासद स्थिति है कि आज मानवता सिसक रही है और रखवाले ही लूटने में लगे हैं। विचारोत्तेजक संपादकीय

के लिए आभार।

-नवनीत कुमार झा, दरभंगा
2rambharos@gmail.com

***

श्रेष्ठ संपादन

आपकी प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक त्रैमासिकी 'विभोम -स्वर' का अक्तूबर-दिसंबर, 2018 अंक प्राप्त हुआ, आभार। संपादकीय के माध्यम से आदरणीया सुधा ओम ढींगरा जी ने पर्यावरण - असंतुलन के खतरों को लेकर जो चिंता व्यक्त की है, वह सर्वथा जायज़ है। सबसे अफसोसनाक बात यही है कि वैज्ञानिकों और पर्यावरणविदों की तमाम अपीलों और चेतावनियों के बावजूद अमेरिका जैसे विकसित देश पर्यावरण -सुधारों को लेकर कोई गंभीर कदम नहीं उठाते, बल्कि तरह-तरह के बहाने बनाकर सारा दोष दूसरे देशों पर डालते रहते हैं।

सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने हमारी संवेदनाओं पर बहुत प्रहार किया है, आज हालात यहाँ तक पहुँच गए हैं कि एक ही घर में रहते हुए लोग एक दूसरे के दुख-सुख से अपरिचित नितांत एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त हैं। सुधा जी ने इस विडम्बना की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस विचारोत्तेजक तथा सामयिक संपादकीय के लिए उनका बहुत-बहुत आभार।

''आख़िरी पन्ना'' स्तम्भ में सुबीर जी ने सोशल मीडिया जैसे मंचों के माध्यम से समाज के बड़े-बड़े शातिर दिमाग लोगों, जिनमें ज़्यादातर सत्ता और सियासत के ऊँचे-ऊँचे पायदानों पर बैठे हैं, के द्वारा अपने - अपने हित में भोले-भाले लोगों को इस्तेमाल किए जाने का महत्त्वपूर्ण मुद्दा उठाया है। निश्चित रूप से आज यही हो रहा है। देश के सामने उपस्थित रोटी-रोज़गार जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों और समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए तरह-तरह के षड्यंत्र रचकर जनता को गुमराह करना हमारे देश की राजनीति का अहम हिस्सा बन चुका है।

हम में से ज़्यादातर लोग, जिनमे दुर्भाग्य से हमारे नौजवान बहुतायत में होते हैं, थोड़े से लालच में एक -दूसरे से लड़ रहे हैं, बिना यह समझे कि हमें लड़ा कौन रहा है ! हाल ही में हुई बुलंदशहर जैसी घटनाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस ज़रूरी विषय पर पाठकों से रू-ब-रू होने के लिए श्री पंकज सुबीर जी का भी बहुत-बहुत शुक्रिया।

हमेशा की भाँति अन्य सामग्री भी पठनीय है। श्रेष्ठ संपादन के लिए हमारी हार्दिक बधाई स्वीकारें।

-जय चक्रवर्ती
jai.chakrawarti@gmail.com

***

संपादकीय में पर्यावरण संरक्षण

विभोम स्वर अक्टूबर-दिसम्बर 2018 अंक के संपादकीय में पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण के हटाने के प्रयास लोगों के दिलोदिमाग पर सीधा प्रभाव डालेंगे या नहीं! कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रकृति द्वारा निर्मित हवा, पानी, मिट्टी, जंगल को मानव के वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, प्रकाश प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और रेडियोधर्मी (परमाणु ऊर्जा उत्पादन, परमाणु हथियारों के अनुसंधान) प्रदूषण इतना दूषित कर दिया है कि इनका पुनर्चक्रण नहीं किया जा सकता।

ज़हरीली गैसों का रिसाव, धूल-धुआँ एवं कूड़ा-कचरा, अम्लीय वर्षा एवं शोर-शराबा प्रदूषण के ऐसे कतिपय उदाहरण है जिनके मानव जीवन की गुणवत्ता पर गहरा प्रभाव पड़ा है। दूषित वातावरण से मानव को विभिन्न प्रकार की शारीरिक विकृतियों, मानसिक कमज़ोरी, कमज़ोर दृष्टि, खाँसी-फेंफड़ों के विकार, असाध्य कैंसर जैसी बीमारियों से जूझना पड़ रहा है। नभचर, जलचर, थलचर सभी जीवधारी प्रदूषण से प्रभावित हुए है।

प्रकृति ने हमें हवा, पानी, मिट्टी, जंगल पर्यावरण संतुलन के लिए प्रदान किए है। इनकी सुरक्षा प्रत्येक नागरिक की ज़िम्मेदारी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51-A(g) में प्रत्येक नागरिक का दायित्व निर्धारित किया है- ''प्रत्येक नागरिक प्राकृतिक पर्यावरण खासकर जंगल, झीलें, नदियाँ और वन्य प्राणी की सुरक्षा और सुधार के अलावा सभी जीवों के प्रति करुणामय रहे।''

कितनी विंडबना है कि प्रकृति के प्रावधान एवं संवैधानिक प्रयास के बावजूद मानव ने औद्योगीकरण और विलासमयी जीवन के चलते पर्यावरण संतुलन पर जानबूझकर कोई ध्यान नहीं दिया। भारत सरकार ने स्वच्छ भारत अभियान चलाया, गंगा सफाई अभियान चलाया पर किस स्तर पर कितना सुधार हो सका ये किसी से छुपा नहीं है। वोट, नोट और सत्ता की राजनीति ने मानव जीवन की गुणवत्ता को निचले स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है। आज प्रदूषण हमारे देश की ही नहीं वरन् विश्व की समस्या है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दुनिया के 20 सबसे ज़्यादा प्रदूषण वाले शहरों में 13 शहर भारत के हैं जिनमें दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता शामिल हैं।

एक ओर विश्व के लोग इस संकट की घड़ी में प्रदूषण से बचने के लिए विभिन्न उपाय खोज रहे है तो दूसरी ओर पर्यावरण में अनेक प्रकार की ज़हरीली गैसों की मात्रा निरंतर बढ़ रही है जिनसे अनेक समस्याओं का जन्म हो रहा है। प्रदूषण से टी.बी., अस्थमा, नेत्र, त्वचा तथा हृदय रोगों में तो वृद्धि हुई ही है, ग्लोबल वार्मिंग, ऋतु चक्र परिवर्तन, भू-स्खलन, बाढ़, भूकंप जैसी आपदाओं से भी दो-चार होना पड़ रहा है।

आज ज़रूरत इस बात की है कि हम आधुनिक जीवन शैली में कृत्रिमताओं के बीच से हटकर प्रकृति से सामंजस्य बनाएँ। विश्व के सभी राष्ट्रों के साझे शैक्षिक प्रयास और प्रदूषण को रोकने वाली नीतियों के सही-सही क्रियान्वयन से भी इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। शिक्षा एक ऐसा आधुनिक हथियार है जिससे हम पर्यावरण और प्रदूषण की गुत्थियों को बहुत हद तक सुलझा सकते हैं।

प्रदूषण को पीछे धकेलने के लिए सोसायटी और स्कूलों में पौधे लगा देना, मुँह पर मास्क लगाकर चलना, प्रत्येक-प्रत्येक दीपावली से पहले बच्चों को पटाखे न चलाने की कसम खिलाने भर से प्रदूषण पर जीत सुनिश्चित नहीं हो जाती। इसके लिए दूरगामी ठोस परिणाम अमल में लाने होंगे। बुद्धि के सहारे मीडिया, सेमिनार, सरकारी-

गैर-सरकारी संगठनों की चौखट पर संवेदनाएँ उड़ेलने से कुछ हासिल नहीं होने वाला।

-विश्वप्रताप भारती, बरला, अलीगढ़ (उ.प्र.) पिन - 202129
मोबाइल - 8057677925

* * *

सभी लघुकथाएँ बहुत अच्छी

विभोम-स्वर का अक्टूबर-दिसम्बर 2018 अंक मिला। आभार। कहानियाँ मुझे पसंद है इसलिए पहले कहानियाँ ही पढ़ी- धर्म, जाति, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष के यथार्थ को दर्शाती कहानी नाच-गान (उर्मिला शिरिष) के साथ-साथ डॉ. पुष्पा सक्सेना की कहानी बर्फ के आँसू ने तो मन मोह लिया। एक बेटे के त्याग और बलिदान की ये कहानी और इसका शिल्प बहुत ही उच्चकोटि का है। डॉ. पुष्पाजी को ढेर सारी बधाइयाँ। परिवारी जन,अर्थात् रखवाले द्वारा ही स्त्री के शारीरिक शोषण की कहानी तुरपाई (वीणा विज उदित) बहुत अच्छी कहानी है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी दी की कहानियाँ मैं पहले भी पढ़ता रहा हूँ। इस बार भी अच्छी कहानी है उनकी। डॉ. गरिमा की कहानी। अब मैं सो जाऊँ, प्रायश्चित का दस्तावेज़ है। अच्छी कहानी है। नीलम कुलश्रेष्ठ तो वैसे भी अच्छी कथाकार हैं। और मजनू का टीला (नीरज नीर) ग़ज़ब का शिल्प, बेहतरीन भाषा शैली के लिए याद रखी जाएगी।

सभी लघुकथाएँ बहुत अच्छी है। लेकिन सुभाष चंद्र लखेड़ा की लघुकथा अनन्य भक्त, अतुलनीय है। कोई जवाब नहीं है।

संपादकीय पत्रिका का आइना होती है, उसे तो पहले पढ़ना लाज़मी था लेकिन पंकज सर का आख़री पन्ना साहित्यकारों की नंगई का यथार्थ है। उनकी हिम्मत और साहस को सादर प्रणाम।

साथ ही पत्रिका के निरंतर विकास और उन्नयन के साथ इसके आसमान छू लेने के लिए प्रार्थनारत मैं आपका ही।

-डॉ. पूरन सिंह, 240, बाबा फ़रीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008, फोन नं. 9868846388
drpuransingh64@gmail.com

फार्म IV
समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।
पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2019

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
संपादक
vibhom.swar@gmail.com

साक्षात्कार

भारत में आलोचना को ले कर बहुत खेमेबाज़ी चलती है

(मॉरीशस के प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कहानीकार, व्यंग्यकार और संपादक रामदेव धुरंधर से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत।)

उपन्यास – चेहरों का आदमी, छोटी मछली बड़ी मछली, पूछो इस मोटी से, बनते विगड़ते रिश्ते, पथरीला सोना -- छः खंड (कुल 3000 पन्ने और 600 के लगभग पात्र), विराट गली के बासिंदे (व्यंग्य उपन्यास)।

कहानी संग्रह – विष – मंथन, जन्म की एक भूल, अंतर्मन।

व्यंग्य संग्रह- कलजुगी करम धरम, बंदे, आगे भी देख, चेहरों के झमेले, पापी स्वर्ग, कपड़ा जब उतरता है।

लघुकथा संग्रह – चेहरे मेरे तुम्हारे, यात्रा साथ – साथ, एक धरती एक आकाश, आते – जाते लोग, मैं और मेरी लघुकथाएँ संग्रह।

सम्मान- सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरीनाम, सृजन श्री सम्मान, अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन, विश्व हिन्दी रत्न, आधारशिला नैनिताल, विश्व भाषा हिन्दी सम्मान, विश्व हिन्दी सचिवालय, श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी सम्मान, नैनिताल आधारशिला, विश्व भारती सम्मान, आधारशिला प्रकाशन भारत, प्रेमचंद सम्मान, हिन्दी भवन न्यास, नैनिताल, साहित्य शिरोमणि सम्मान, मॉरिशस भारत अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी, हिन्दी विदेश प्रसार सम्मान, उ. प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ, विश्व नागरी रत्न सम्मान, देवरिया उ. प्र., श्रीलाल शुक्ल इफको साहित्य सम्मान, वैश्विक हिन्दी सम्मान मुम्बइ, हिन्दी सम्मान, भोपाल, परिकल्पना शीर्ष कथा सम्मान।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

संपर्क: Caroline, Bel - Air, Mauritius.

ई-मेल : rdhoorundhur@gmail.gom

कहानी, कविता, उपन्यास, लेख, संपादकीय और कभी -कभी स्वाद बदलने के लिए व्यंग्य लिखने के बावजूद मैं कई बार बेचैन हो जाती हूँ। हर बार कारण भी ढूँढ़ती हूँ। मैं जानती हूँ मेरा मन बेहद जिज्ञासु है। कुछ दिनों बाद किसी वैश्विक साहित्यकार के बारे में जानने और उसका साक्षात्कार लेने को मन मचल उठता है। साक्षात्कार लेना मेरा पत्रकारिता के दिनों का जुनून है; जो समय-समय पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा देता है। आस-पास के देशों के तो बहुत से साहित्यकारों के साक्षात्कार ले चुकी हूँ। इस बार इच्छा हुई कि मॉरीशस के उपन्यासकार, कहानीकार, व्यंग्यकार और संपादक रामदेव धुरंधर जी का इंटरव्यू लूँ। उनसे बात की और वे तैयार हो गए। प्रश्न भेजे गए और प्रस्तुत है, उनसे की गई बेबाक बातचीत-

प्रश्न – आप स्वयं को गिरमिटिया साहित्यकार मानते हैं या प्रवासी साहित्यकार? इस प्रश्न को पूछने का कारण है कि आलोचक गिरमिटिया साहित्य और प्रवासी साहित्य को अलग मानते हैं। अलग मूल्यांकन करने का कारण देते हैं कि गिरमिटिया साहित्य दूसरी पीढ़ी द्वारा लिखा गया अतीत का साहित्य है और बाकी देशों में लिखा जा रहा साहित्य, जिसे प्रवासी साहित्य कहा जाता है, वह पहली पीढ़ी का वर्तमान में रचा जा रहा साहित्य है। आपकी इस बारे में राय क्या है और आप क्या समझते हैं?

उत्तर- 1973 में कालजई उपन्यास 'झूठा सच' के रचनाकार यशपाल जी मॉरिशस आए थे। हमारे देश के एक कविता संग्रह का यशपाल जी के हाथों विमोचन हुआ था। कविता का शीर्षक था 'प्रवासी स्वर।' यशपाल जी ने इस पर अपना स्पष्टीकरण इस रूप में दिया था मॉरिशस के लोग प्रवासी नहीं हैं। उस दिन यह बात आई गई हो गई थी, लेकिन इस का ताप मेरे मन में रह गया था। तब से ले कर आज तक मैं यशपाल जी की इस बात से पूरी तरह सहमत चला आ रहा हूँ। भारत के लोगों को मॉरिशस पर लिखना होता है और वे अपने हिसाब से लिखते चले जाते हैं। मुझे दुख है उन में से बहुतों के लेखन में गहराई होती नहीं है। कोई तो अभिमन्यु अनत का नाम ठीक से नहीं लिखता। अनत को लोग हुनत बना देते हैं। अब जिस बहुचर्चित लेखक का नाम आप सही रूप में न जानें किस दंभ पर आप उस देश के साहित्य के अन्वेषक हो जाते हैं? मेरे रामदेव नाम का भी यही हाल है। मैंने अपना नाम रामजीत धुरंधर लिखा हुआ देखा है। प्रो. बासुदेव विष्णुदयाल के लिए लिखा गया था वसुधैव विष्णुदत्त। यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक की बात मैं कर रहा हूँ। मैंने लेखक से पूछताछ की तो वे कशमकश में पड़ कर क्षमा माँगने लगे। पर मैं क्षमा करने वाला कौन होता हूँ। आपने जो लिख दिया वह सदा के लिए रह तो गया।

अभी दो चार दिन पहले मैं भारत से लौटा हूँ। बहुतों ने मुझ से पूछा मैं भारत के किस प्रांत से जा कर मॉरिशस में बसा हूँ। इस का मतलब यह है लिखने वाले भी यही ग़लती करते हैं। उन्हें लगता है हम भारत में जन्म पाने पर मॉरिशस में जा कर बसे तो प्रवासी ही तो हुए। जब कि हमारी जन्मभूमि मॉरिशस है और चार पाँच पीढ़ियों का मॉरिशस में हमारा इतिहास है। तो ऐसे में हम प्रवासी कैसे हुए? मैं अपने को भारतेतर हिन्दी लेखक मानता हूँ। मेरे साथ 'भारतीय वंशज' चल सकता है। मैं सिर नत किए इस अलंकरण को स्वीकार करता हूँ। भारत मुझ में है लेकिन कृपया मुझे 'प्रवासी' न कहें।

आप के प्रश्न का मैंने इतना खुलासा तो किया मैं प्रवासी साहित्यकार नहीं हूँ। रहा 'गिरमिटिया' शब्द यह मेरे परदादा और उन के समकालीनों के लिए था। वे 'आप्रवासी' थे यह भी चल सकता है। वे लोग 'एग्रिमेंट' पर मॉरिशस आए थे। पर यह शब्द सही न बोला

गया और यह हो गया 'गिरमिटिया।' आलोचक गिरमिटिया उन्हें मानते हैं जो कभी यहाँ आए थे और हमें प्रवासी कह कर अर्थ यह बनाते हैं कि हम प्रवासी गिरमिटिया लोगों की कहानी लिख रहे हैं। मतलब जैसे कि मैं 'पथरीला सोना' उपन्यास लिखने वाला आप्रवासी हुआ और जिसकी कहानी लिखी वे गिरमिटिया थे। मैं इस खिचड़ी पर अफसोस प्रकट करता हूँ।

'प्रवासी' शब्द उन के साथ चल सकता है जो भारत से बाहर इंग्लैण्ड, फ्रांस वगैरह गए और लेखन कर्म में आज भी अपने को तपा रहे हैं। मैं उन्हें नमन करता हूँ, लेकिन इस अर्थ में नहीं कि वे और आज के हम मॉरिशसीय हिन्दी लेखक एक ही नाव पर सवार हैं। वे प्रवासी हैं और हम मॉरिशस के लोग यहाँ के पैदाइशी लेखक हैं।

प्रश्न – रामदेव जी, हृदय से आभारी हूँ कि आपने मेरे प्रश्न का बेबाक उत्तर दिया। यह प्रश्न मैं सब से पूछती हूँ। एक पाठक के तौर पर मुझे जिज्ञासा रहती है तो निस्सन्देह पाठकों को भी होती होगी। पहले पहल आप ने कलम कैसे उठाई? और सब से पहले क्या लिखा? क्या थे प्रेरणा स्रोत ?

उत्तर– आप सब से जो प्रश्न पूछती हैं वही प्रश्न मुझ से भी पूछा इस के लिए मुझे खुशी हो रही है। मैंने शायद इस अर्थ में लिखने के लिए कलम अपने हाथ में थामी होगी कि मुझ में इस के लिए कोई बीज हो जो अंकुरित होने के लिए विकल हो। घर में हिन्दी का वातावरण था। मेरे एक चाचा ने घर छोड़ने पर साधु का चोला धारण कर लिया था। उन की बहुत सी हिन्दी की पुस्तकें हमारे घर पर थीं। मैंने उन पुस्तकों को सहेज कर रखा और कुछ हिन्दी जानने पर पढ़ना यहीं से शुरू किया। उम्र कुछ आगे बढ़ी और जैसा कि मैंने कहा लिखने के लिए बीज स्वरूप मेरा कोई उत्स हो उस के वशीभूत हो कर मैंने लिखना शुरू किया। सब से पहले कहानी ही लिखी। कहानी एक गरीब लड़के पर आधारित थी। कहानी का शीर्षक था नेता। लड़का गोरों के खेतों में काम करता है और हक के लिए बात करने पर उस के हिस्से प्राणदंड आता है। मेरे उपन्यास 'पथरीला सोना' के प्रथम भाग का कैंवल उसी चरित्र का विस्तार है।

प्रश्न – आप संपादक हैं, कथाकार हैं और व्यंग्यकार भी हैं। विधाएँ आप को चुनती हैं या आप विधाओं का चुनाव कर लिखते हैं?

उत्तर– यह सही है इन तीनों विधाओं पर मेरा लेखन टिका हुआ है। तीनों की अपनी – अपनी कसौटी होने से इन के अनुरूप कथ्य का होना ज़रूरी होता है। ऐसे में दोनों ओर से बात एक ही है या तो ये मुझे चुनें या मैं इन्हें चुनूँ। कहानी और उपन्यास के लिए कथ्य लगभग एक सा होता है, लेकिन एक में कम विस्तार होता है और दूसरे में विस्तार ज़्यादा। व्यंग्य की पृष्ठभूमि इन से बहुत भिन्न है। मज़दूर पसीना चुआ कर खेत में काम कर रहा है यहाँ व्यंग्य नहीं संवेदना होनी चाहिए; जिस की आपूर्ति कहानी और उपन्यास ही कर सकते हैं। व्यंग्य राजनीति, सामाजिक विद्रूपता आदि के लिए कारगर होता है। मेरा मन जब इस में जाता है तो लिखने में मेरी रुचि बन ही जाती है। व्यंग्य में राजनेता की नाक चपटी लग सकती है, लेकिन संवेदनशील कहानी में कमर से झुकी हुई बूढ़ी नारी अपनी माँ जैसी लगेगी।

आप के प्रश्न में यह भी है मैं संपादक हूँ। मैं महात्मा संस्थान में 1978 में संपादक की हैसियत से नौकरी करने गया था और इसी नौकरी में 2006 तक रह कर वहीं से अवकाश ग्रहण किया। मॉरिशस की रचनाएँ जैसी भी होती थीं उन्हीं से हमें काम लेना पड़ता था। अकसर रचनाओं को बनाना पड़ता था। यहाँ मैंने सीखा भी बहुत। अपने देश की पूरी हिन्दी से मेरा सरोकार होता था। मैं मानता हूँ संपादन का वह युग मेरे साथ आज भी जैसे मेरे जीवन की तरह मुझ में साँसें ले रहा हो।

प्रश्न – संपादन, कथा लेखन और व्यंग्य लेखन इन तीनों विधाओं की मूल प्रवृत्तियों में भिन्नता है। आप इन विधाओं के साथ न्याय कैसे करते हैं?

उत्तर– यह सही है संपादन, कथा लेखन और व्यंग्य एक दूसरे से बहुत दूर पड़ते हैं। उन की आपसी दूरी को मानें और उन से जूझना भी पड़े मेरे ख़्याल से यह अधिक दुष्कर नहीं है। संपादन में हों तो वहाँ परखने की कसौटी प्रमुखता पर होती है। किसी ने कहानी लिखी, लेकिन उस का निर्वाह कहानी जैसा नहीं किया, संपादक इसे मज़बूती से पकड़ता है। संपादन कार्य बहुत हद तक संपादक को कठोर भी बनाता है। पर संपादक जो काम करे उस में इतनी भावना तो हो वह लेखक के साथ अन्याय करने के लिए संपादक नहीं है। मैंने अपना यह धर्म निभाया है। आज मैं कह सकता हूँ बहुतों की कहानियाँ और कविताएँ मैंने आमूल चूल परिवर्तित कर के उन्हीं के नाम से छापी है। वे खुश ही हुए हैं।

बाकी व्यंग्य और कथा लेखन की जो बात है यह मेरे निज से है। मुझे जिस किसी भी विधा में लेखन करने का मन हुआ है मैंने उसी के अनुरूप प्रसंग का चयन किया है और निर्बाधित रूप से लिखता रहा हूँ।

प्रश्न – कहानी और उपन्यास की आप की रचना प्रक्रिया क्या है?

उत्तर– मुझे तो लगता है कहानी और उपन्यास के लिए ही मैं लेखक हुआ करता हूँ। इन में कथा होती है और मुझे कथा की रचना करना अच्छा लगता है। परंतु महज कथा वाचन मेरा उद्देश्य नहीं होता। चाहे उपन्यास हो या कहानी अपने किसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर मैं उस में पड़ता हूँ। अपने कथा साहित्य से मैं कोशिश करता हूँ एक बेहतर समाज का खाका तराश सकूँ। लेखन करने से एक तो मेरे मन की बात एकदम से सामने आ जाती है और दूसरी अहम बात यह होती है समाज की थाती मैं समाज को ही लौटाता हूँ। पर उस में मेरी खासियत इतनी तो होती है जिस समाज को मैं जानता हूँ रचना प्रक्रिया में वह मेरा समाज हो जाता है। मैं अपना अधिकार मानता हूँ उस समाज को एक दिशा में ले जा सकता हूँ और जब रचना का अंत करूँ तो मुझे स्वयं लगे जो समाज मैं चाहता हूँ वही रच कर अथवा लिख कर उसी समाज को वापस कर रहा हूँ जिस का वह था, लेकिन अब मेरी ओर से उस में एक बिंदी लग जाने से वह इस तरह से हो गया है। मेरे हस्तक्षेप से समाज घायल नहीं होगा, बल्कि उस की रौनक बढ़ेगी। समाज सत्यम् शिवम् सुन्दरम् को यदि एक प्रवाह से न थाम रहा हो तो मैं समझता हूँ मेरा दायित्व होता है उसे एक कड़ी में पिरो कर लिखूँ। इस दृष्टि से सत्य, कल्याण और सुन्दरता ही अंतिम सक्ष्य हो।

प्रश्न – व्यंग्य लेखन की प्रेरणा आप को कहाँ से मिली?

उत्तर– प्रेमचंद, यशपाल, रेणु, अमृतलाल नागर आदि को पढ़ने का मेरा एक खास उद्देश्य था। मैं इन्हें पढ़ता था तो इन से मुझे लेखन सीखना भी था। इस तरह मेरे हिन्दी लेखन का स्रोत भारत के लेखक ही रहे हैं। व्यंग्य लेखन मेरे दिमाग में बहुत बाद में आया। मेरी चार व्यंग्य कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं -- पापी स्वर्ग, बंदे, आगे भी देख, चेहरों के झेमले और कपड़ा जब खुलता है। इन कृतियों का स्रोत भी भारत के लेखकों से ही है। धर्मयुग में खूब व्यंग्य छपते थे। के. पी. सक्सेना, शरद जोशी, हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, गोपाल चतुर्वेदी इन स्वनामधन्य व्यंग्यकारों की रचनाएँ एक विशेष शैली में सामने आती थीं। आजकल तो ऐसा लगता है व्यंग्य लेखक शैली को थामते हैं तो कथा उन से छूटती है और कथा का उन पर ज़ोर बनता है शैली लचर हो जाती है। पर धुन सब की एक ही है वे मानों व्यंग्य में पहाड़ तोड़ रहे हैं। मैंने लेखक अरविंद तिवारी जी से दिल्ली में एक कार्यक्रम के अंतर्गत कहा था व्यंग्य लेखक ऊपर में न लिखे 'मेरा उम्दा व्यंग्य' तो उसे किसी और विधा की रचना मान कर पाठक पढ़ता चला जाएगा। तिवारी जी ने मंच से मेरा नाम ले कर यह कह भी दिया था। व्यंग्य रचना का कार्यक्रम चल रहा था। यह बात कुछ कर्कश ही थी, लेकिन इसे भी व्यंग्य में ले कर वातावरण को सहज बना दिया गया था। मुझे नहीं लगता के. पी. सक्सेना, शरद जोशी, हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल और गोपाल चतुर्वेदी के युग से आगे व्यंग्य ने कोई खास उत्कर्ष हासिल किया हो, लेकिन प्रयास जारी है। रही मेरी बात, राग दरबारी ने मेरे दिमाग में व्यंग्य के मामले में एक खास आलोड़न पैदा किया था और मैंने तभी से इस विधा में अपने को कुछ कुछ आजमाना शुरू कर दिया था। मुझे अब भी व्यंग्य लिखना पड़े तो एक तरह से टो टो कर ही लिखूँगा, लेकिन आत्म विश्वास तो इस रूप में ज़रूर पुष्ट रहेगा व्यंग्य तो लिख ही रहा हूँ।

प्रश्न – क्या आलोचकों ने आप के साथ न्याय किया है?

उत्तर– मैं भारत से बहुत दूर समुद्र पार का लेखक हूँ। यह एक कारण हो सकता है आलोचकों का ध्यान मुझ पर अधिक जाता नहीं है। एक बात यह भी है सुनता हूँ भारत में आलोचना को ले कर बहुत खेमेबाजी चलती है। मेरी रचना का स्वर मॉरिशस होता है इसलिए भी आलोचक मेरी पृष्ठभूमि को ठीक से न जानने की स्थिति में मुझसे कन्नी काट लेते हों। पर जहाँ तक अपने बारे में मुझे आलोचनाएँ पढ़ने को मिली हैं वे मेरे लिए उत्साहवर्द्धक ही रही हैं। मैं अपने दिल से कह रहा हूँ मेरी कृतियों की आलोचना तटस्थ रूप से की जाए तो वह मुझे स्वीकार्य होगी। आलोचना दुराव के लिए न हो, बल्कि जोड़ने के लिए हो। अब तो मेरी पर्याप्त पुस्तकें छप चुकी हैं। सम्मान मुझे तमाम मिले हैं। आलोचना की कसौटी मेरे लिए अहम ही होगी।

प्रश्न – आप मूलत: स्वयं को क्या मानते हैं? कहानीकार, उपन्यासकार या व्यंग्यकार?

उत्तर– मैं अपने को मूलत: कथाकार मानता हूँ। मेरे कथा लेखन में कहानी, उपन्यास और व्यंग्य के तत्व होते हैं। कथा लेखन की मेरी परिधि गद्य होने से मैं इसी में रह गया हूँ और पद्य मुझ से दूर पड़ता गया है। पद्य लेखन के लिए मेरे मन में न कभी मोह रहा और न अब भी है। मैं ऐसा मानता हूँ मेरा गद्य पूरा बोलता है इसलिए अपना लिखा हुआ कोई वाक्य मुझे अधूरा सा लगता है या जो मैं अर्थ संप्रेषित करना चाहता हूँ वह पूरे रूप से न खुल रहा हो तो मैं उस पर नए सिरे से काम शुरू करता हूँ।

मैं लघुकथा भी खूब लिखता हूँ और गद्य – क्षणिका नाम से एक विधा भी मैंने शुरू की है। सब में कथा का ही तो बीज है। आप के इस प्रश्न पर मैं गौर कर रहा हूँ मैं कहानी, उपन्यास या व्यंग्य में अपने को कहाँ अधिक करीब पाता हूँ? कहानी और उपन्यास से मेरा अधिक साझा है। मैं जहाँ से भी कथ्य लेता हूँ और उसे लिखना शुरू करता हूँ तो मुझे लगता है स्वयं को ही व्यक्त कर रहा हूँ। स्वयं का यह सुख मेरे लिए अनुपम होता है। सब से बड़ी बात मेरे लिए यह है कि उपन्यास और कहानी के लिए मेरे पास बनी बनाई भाषा होती है। रहा व्यंग्य यह भाषा में कसरत माँगता है। बल्कि इस तरह से कहूँ व्यंग्य में भाषा को बनाना पड़ता है। भाषा को अनुकूल रूप से बना न पाएँ तो व्यंग्य उस में सही रूप से प्रतिबिंबित हो नहीं पाता है। मैं व्यंग्य लिखता हूँ तो मेरी समझ में यह साथ-साथ चल रहा होता है भाषा को तो रचना ही है। व्यंग्य के लिए यह रच रचाव तो मैं कर लेता हूँ, लेकिन मेरा मन भागता है तो अधिकाधिक कहानी और उपन्यास के पीछे।

प्रश्न – किसी ने आप के बारे में लिखा है– धुरंधर के शब्दों में इंसानियत की लौ धधकती है। जो आवाज़ गूँजती है, उस का धरातल जीवन के कठिन संघर्षों से उपजा है। उन संघर्षों के बारे में पाठकों को बताएँगे?

उत्तर– जिस ने मेरे बारे में ऐसा कहा है उस का मैं वंदन करना ज़रूरी मान रहा हूँ। मुझे मेरे जीवन से जानने वाले ने ऐसा कहा हो तो हो सकता है मेरे स्वभाव और व्यवहार को परख कर कहा हो। जिस ने मुझे करीब से न जानने पर मेरा लिखा पढ़ कर ऐसा कहा हो तो उस के लिए भी मेरे पास वंदन के ही शब्द हैं। इस प्रश्न के इस अंश से अपने को जो जोड़ कर मैं कुछ लिखने जा रहा हूँ अर्थात् मेरा धरातल मेरे जीवन के कठिन संघर्षों से उपजा है। ग़रीब परिवार में पैदा हुआ बालक सोने की चम्मच की बात तो न कहेगा, लेकिन इतनी बात तो करेगा उसे ठीक से खाना मिले। मैंने अपने बचपन में अधिकतर रुखा सूखा ही जाना है। पिता को मज़दूरी की तनख्वाह मिलने पर वे बढ़िया भोजन की व्यवस्था करते थे। यह उन का प्रेम था और मैं उन के इस प्रेम पर आज भी अपनी जान लुटाने के लिए तैयार हूँ। मेरे माता-पिता किसी तरह कष्टों से लड़कर अपने बच्चों की खुशहाली के लिए नित प्रयास में लगे रहते थे। वे हमारी माँगे चाहे ठीक से पूरी न कर पाते थे, लेकिन उन का प्रयास मेरे लिए आज बहुत बड़ा मायने रखता है। मैंने मज़दूरी की और गोरों के खेतों में श्रम के बदले अपमानित भी हुआ। एक बार हक के लिए बोलने पर एक सप्ताह का मेरा पैसा ज़ब्त हुआ था। पसीना बह रहा हो और कोई इस तरह से लूट मचाए तो मन में तो यही आएगा ऐसे को काट फेंका जाए। मैंने ग़रीबी में ही शादी की और पढ़ाई की बदौलत सरकारी स्कूल में टीचर बनने पर मेरे अँधेरे जीवन में रोशनी आई। पर वह रोशनी पर्याप्त नहीं थी। तंगी कुछ-कुछ दूर

हुई और मैं मानता हूँ मैंने अपने बच्चों की आवश्यक चीज़ों में हमेशा कटौती की है। आज उन का जीवन समृद्ध है। मैं भी खुशहाल हूँ और लेखन से अपनी सुबह शुरू करने के बाद शाम तक इसी में रह जाता हूँ। मेरे संघर्ष ने मुझे सिखाया है मेहनत से कुछ पाया जा सकता है और यही जीवन का निचोड़ होना चाहिए। मैं अब भी इस पर तटस्थ हूँ।

प्रश्न – कौन-कौन से समकालीन लेखकों को आप ने पढ़ा है और किस से आप अत्याधिक प्रभावित हैं?

उत्तर– मैं मॉरिशस का वासी होने से मानता हूँ मेरा एक विशेष संकट यह कि भारत में जो आज लिखा जा रहा है उस से मैं अधिक जुड़ नहीं पाता हूँ। पाँच सौ रुपए की पुस्तक डाक से मंगाने में उतने का ही टिकट लगता है। अभी पिछले दिनों मैंने भारत जाने पर अपने तीन प्रकाशकों से अपनी पुस्तकों की कुछ प्रतियाँ लीं। एयरपोर्ट में मुझे सत्रह हज़ार रुपये चुकाने के लिए कहा गया। मेरी पुस्तक छप जाने पर प्रकाशक एक प्रति भेजने से कतराते हैं। ऐसे में थोड़ी विद्रूपता से यही तो कह सकता हूँ मेरे सिर पर हिन्दी का क़र्ज़ है जिसे अपना जीवन गला कर मैं उतार रहा हूँ।

समकालीन रचना पुरानी हो जाने पर ही मेरे हाथ लगती है और वह भी बहुत ही न्यून मात्रा में। परंतु फेसबुक से मुझे थोड़ी पहचान हो जाती है कि किस का क्या छपा और उस पर लोग कैसी प्रतिक्रिया दे रहे हैं। ऐसा भी हो रहा है कि लेखक ही अपने बारे में अधिक लिख रहा है। कोई कोई तो यहाँ तक लिख देता है वह शीर्ष कवि है, शीर्ष महाकवि भी। कविता की उस की पुस्तक खरीदने के लिए लोग कतार लगाए खड़े हैं। ऐसे कवि के चरण पखारने के लिए मेरी तबीयत मचलने लगती है। तुलसीदास तो मुझे नहीं मिलेंगे। मेरे अपने युग में घर बैठे ऐसे होनहार कवि मुझे मिल जाएँ मेरा परम सौभाग्य।

धर्मयुग और सारिका का ज़माना यदि अब भी बरकरार रहता तो समकालीन लेखकों की बाढ़ लगी होती। मैंने उस युग में साहित्य की यात्रा की है। मिथिलेश्वर और संजीव मेरे समकालीन थे और आज भी हैं, लेकिन धर्मयुग और सारिका न होने से हम तीनों मानों बहुत दूर के त्रिकोण हो कर रह गए। इफको सम्मान जिस में ग्यारह लाख रुपये जुड़े होते हैं यह सम्मान हम तीनों को मिला है। यह पिछले दो चार साल पहले की बात है। मुझे लगता है मैंने चालीस साल पहले के बिछड़े अपने भाइयों को पा लिया है।

प्रश्न – क्या आप अपने लेखन से संतुष्ट हैं?

उत्तर– अचानक इस तरह से प्रश्न सामने आ जाए कि मैं अपने लेखन से संतुष्ट हूँ कि नहीं, देखने में यह प्रश्न सहज लगे लेकिन सहज है नहीं। बल्कि मुझे तो लग रहा है अब तक के मुझ से पूछे गए प्रश्नों में से यह प्रश्न मेरे लिए बहुत ही कठिन है। मुझे अपने समस्त लेखन को ध्यान में रख कर सोचना पड़ रहा है उत्तर हाँ में दूँ कि ना में? मैं हाँ और ना दोनों को समीचीन मान रहा हूँ और उत्तर यह बन रहा है संतुष्ट हूँ भी और नहीं भी हूँ। सब से पहले अपनी संतुष्टि का प्रमाण देता हूँ। मैंने कभी बचपना से भरी कोई कहानी लिखी होगी। मैंने उस कहानी को बहुत छिपाया होगा; क्योंकि मेरा मन स्वयं मुझ से कहता रहा होगा कहानी का वहम तो हो सकता है, लेकिन कहानी तो कतई नहीं। पर बात यह भी रही होगी मैंने अपनी ही शर्म से प्रतिकार लिया होगा और दूसरी कहानी के लिए मेरे दिमाग में कथ्य की सुगबुगाहट शुरू हो गई होगी। मैंने दूसरी से तीसरी और फिर तीसरी से चौथी कहानी लिख ली होगी और मुझे याद आया होगा इन्हें प्रकाशित तो होना चाहिए। अपनी कहानियाँ अखबार और पत्रिका को भेजने पर स्वीकृति के पत्र आए होंगे या ऐसा भी कि संपादक ने मुझे बिना बताए छाप दी हो। जो छपा मेरे नाम से छपा होगा और वह मेरे लिए इस रूप में प्रमाण पत्र बन गया होगा कि कहानी होने से ही तो छपी।

लेखन की वह आरंभिक सफलता मेरे मस्तिष्क के लिए मानों चंदन हुआ हो और वह भी निष्पाप चंदन जिसे मैं फक्र से किसी को दिखा कर कह सकता था मैंने मोती बोया तो बदले में मोती ही पाया। अब मेरे लेखन के पचास साल से भी अधिक वक्त बीता और इस बीच मैंने कभी रुक कर तो कभी बहुत रफ्तार से लेखन किया है। कभी सालों लिखा नहीं, लेकिन मैं जानता था न मैं लेखन को छोड़ सकता हूँ और न वह मुझे छोड़ने वाला है। हम एक जान और दो जिस्म थे जिस का उपसंहार एक जान में ही होने वाला था। अब विपुल लिख लेने पर मुझे लगता है मैंने बूँद से सागर तो बना ही दिया है और शायद मेरा नाम अनमिट रह जाए।

यह अपने लेखन की मेरी संतुष्टि हुई। परंतु असंतुष्टि भी तो मेरे मन पर दस्तक दे कर मानों कहती हो तुमने वह तो लिखा ही नहीं जो लिखने के लिए अब तक तैयारी करते रहे हो। मेरे मन का यह कहा झूठ नहीं है। वह कोई कहानी होगी, उपन्यास होगा, व्यंग्य या ऐसा ही अनाम अपरिचित निढाल सा कोई कथ्य होगा जो मुझ से रचना की काया पाने के लिए बेसब्री से मेरा इंतज़ार कर रहा होगा। या ऐसा भी कि न हो कर भी होना चाहता हो और उस का कर्ता मुझे ही होना पड़े। इस अनबूझ अनकही हवा में साँय-साँय घोलती जो संभवत: मेरी अपनी ही बनाई हुई मृग मरीचिका हो इस के पीछे मुझे भागना है या उसे मेरे पीछे आना है और यहाँ भी बात वही कि दो जिस्म से हम एक जान हैं।

प्रश्न – आपकी भावी योजनाएँ क्या हैं?

उत्तर– जिस तिथि को आप यह प्रश्न पूछ रही हैं इस तिथि से दो दिन पहले मैं भारत से लौटा हूँ। मैं दिल्ली में था तो उन्हीं दिनों सामयिक प्रकाशन की ओर से 'ढलते सूरज की रोशनी' शीर्षक से मेरा उपन्यास छपा था। मैंने वहीं प्रति पाने पर पूरा उपन्यास पढ़ा। घर आया तो पत्नी से मुझे पता चला नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया से मेरे कहानी संग्रह के लिए अनुबंध पत्र आया है। यह सब तो हो गया और अब अगली योजना के बारे में सोच रहा हूँ। मैंने छ: खंडों में पथरीला सोना उपन्यास लिखा है। इस का सप्तम् खंड लिख रहा था, लेकिन अभी यह रोक रहा हूँ। मैं एक और कहानी संग्रह तैयार करने के निश्चय पर अपने को पा रहा हूँ। मैंने इस से पहले कहा है मैंने कहानी से शुरू किया था, लेकिन उसे ही बहुत हद तक छोड़ता गया हूँ। यह एक प्रकार से मेरी लेखकीय वेदना है जिस से उबरने की चाह होने से मैं और भी बहुत सारी कहानियाँ लिखना चाहता हूँ।

***

मेरी तीन कसमें ...

हर्ष बाला शर्मा

हीरामन तुमने तीन कसम खाई थीं ना! किन हालातों में? कैसे इतनी जल्दी निर्णय पर पहुँच गए और खा लीं तीन-तीन कसम! मन से भी मान बैठे, या फिर बाहर-ही-बाहर की कसमें थीं? तुमने कहा कि अब किसी नौटंकी वाली को गाड़ी में नहीं बिठाओगे! सच बताओ, मन में घुमड़ नहीं रहा था कि हाथ बड़ा कर इसे ही जीवन भर के लिए गाड़ी में बिठा लो? पर न जाने क्यों, उस समय हाथ-पाँव और मन कमज़ोर पड़ जाते हैं, जब सबसे ज़्यादा ज़रूरत हो। मेरी भी तीन कसमें हैं, सुनोगे? शायद किसी दिन मैं भी तोड़ पाऊँ इन्हें। क्या पता!

इसका सिलसिला शुरू हुआ होगा कुछ-एक-पाँच साल पहले। 'सलीमा' का वो आख़िरी साल था कॉलेज का। एकदम गंभीर और चुप्पा लड़की सलीमा। आख़िरी छमाही में जब कॉलेज खुला तो एक शोख और चंचल मुस्कान थी उसके चेहरे पर। मैं कुछ देर तो भरोसा नहीं कर सकी कि सलीमा इतनी शोख और चंचल क्यों दिख रही है। फिर सोचा, कितनी बुढ़ा गई हूँ ...उम्र के सदके.... लड़कियाँ कितनी खुशनुमा दिखने लगी हैं..। हम भी तो पगला जाते थे वसंत के माहौल में। शरमाती हुई सलीमा मेरे पास आई और बोली.. आपसे बात करनी है। कुछ मिनट दे सकेंगी ट्यूट के अलावा। मेरी लड़कियाँ ट्यूट के आख़िरी मिनट तक साथ-साथ लदी ही रहती हैं, और मुझे अहसास-ए-शिद्दत से भरी ही रखती हैं तो चलो आज ट्यूट के अलावा ही सही। 'आती हूँ' कहकर कुछ मिनट बाद मैं गम्भीर मुद्रा से उसके पास पहुँची तो कॉलेज के तीसरे कोने में खड़ी सलीमा गुनगुना रही थी.... 'आज मेरे ज़मीं पर नहीं हैं कदम।' मैं मुस्काई 'क्या सलीमा, सब ठीक।'

मैडम पता नहीं क्यों दिल चाहा आपको, बता दूँ आज जावेद ने पीर बाबा की मज़ार पर मुझे मिलने को कहा है।' मैं देखती रह गई। सलीमा के घर के हालात किसी से छिपे न थे। सलीमा किसी तरह अपने भाई को कॉलेज से मिली छात्रवृत्ति से पढ़ा रही थी और खाली वक्त में सूट सिलकर अपने घर का खर्चा चला रही थी। पिता के पास काम न था क्योंकि सरकार मीट की बिक्री पर रोक लगा चुकी थी। घर बैठा पिता अपनी बेकारी का सारा गुस्सा बीवी और बच्चों पर निकालता था। माँ पढ़ी लिखी थी नहीं और बेटी की पढ़ाई की भूख उसकी समझ के बाहर थी। ऐसे में सलीमा का यह वाक्य मुझे सोचने के लिए मजबूर कर गया।

'सलीमा तुमने सब सोच लिया है ना!' बस इतना ही कह सकी मैं।

'हाँ मैम। जावेद बहुत अच्छा है, मेरा बहुत ख़्याल रखेगा।' वो चहक रही थी।

संपर्क: सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ स्केल)
हिन्दी विभाग, इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
ई-मेल: ip.harshbala@gmail.com

अब मेरा ध्यान उसके खुले बालों पर गया। साधारण से सूट में कोई सस्ता सा परफ्यूम लगाए अपने चेहरे पर रूमानियत लाने की कोशिश में हलाल सी होती ये लड़की मुझे बहुत प्यारी लगी। मन हुआ, उसका माथा चूम लूँ, पर रुक गई।

'आज क्लास में नहीं आऊँगी मैम। अलग से पढ़ा दीजिएगा न।' बस अपने में डूबी मैं सर हिला सकी, कुछ कह न पाई।

सलीमा कई दिनों तक कॉलेज नहीं आई। मेरा इन्तज़ार बढ़ता ही जा रहा था। फिर एक दिन 'इतिहास' की कक्षा में कुछ देर से आने वाली छात्राओं की तरह दरवाज़े में सिर डालकर उसने झाँका।

'आ सकती हूँ मैम?' मेरी क्लासेज में प्राय: विद्यार्थी या तो समय से आते हैं, या बाहर खड़े होकर इन्तज़ार करते हैं, बीच में डिस्टर्ब नहीं करते। पर इस लड़की से शायद वह सब्र नहीं रखा गया। कुछ हिकारत और गुस्से से मैंने भी आने दिया' बहुत जल्दी आ गईं आप! आइए!'

उसका चेहरा उतर गया था। मैंने तय कर लिया था, इससे अब बात नहीं करूँगी। पर क्लास खत्म होते-होते वह मेरे सामने खड़ी थी.. 'आपसे बात करनी है।'

खुदा.. ये लड़की तो फजीहत कराएगी क्लास भर में।

'बोलिए सलीमा, वैसे अगला टयूट है, वहाँ आ सकती हैं आप।'

'पर मैम, फिर बाकी सब को मना कर दीजिए। हम सिर्फ आपसे अकेले में बात करना चाहते हैं।' आजतक किसी विद्यार्थी ने मुझसे इस तरह बात नहीं की थी। जज़्ब करने में समय लगा 'ठीक है आइए' कहकर मैं आगे बढ़ गई।

सलीमा के हाथों-पैरों पर मार के निशान थे। पिता ने जी भर कर मारा था, इस ग़लत दुनिया में कदम रखने वाली लड़की को। जावेद मियाँ ने शादी का वादा किया था, और जल्द ही दूल्हा बनकर आने के लिए बेताब थे। उनकी माँ बहुत बीमार रहती हैं और तीमारदारी के लिए कोई नहीं है। सलीमा एक अच्छी बहू हो सकेगी, वे मानते थे। यही कहकर उन्होंने सलीमा को चूमने की कोशिश की थी, पर सलीमा तैयार न हो पाई। घर आकर मार खाई और पढ़ने पर बंदिश भी लग गई। आज न जाने कैसे

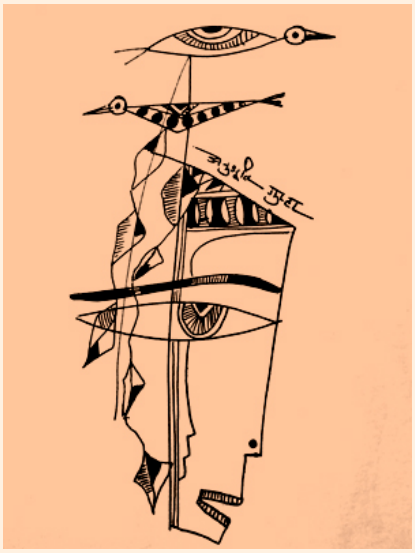

मिलने भर को भेजा गया था उसे कॉलेज की मैडम से। सलीमा बोले जा रही थी, और मैं सुन्न हो गई थी।

'क्या करना चाहती हो सलीमा, बोलो? उन्हें कोई हक नहीं, वे तुम्हें इस तरह मार सकें। और ये जावेद, तुम्हें चाहता भी है या सिर्फ तीमारदारी के लिए एक औरत चाहिए उसे?'

'मैडम, छोड़िये ना, अम्मी-अब्बू को हक है हाड तोड़ दें हमारा। आख़िर औलाद हैं हम उनकी। अपने खून से बनाया न उन्होंने। जावेद मियाँ भी ठीक हैं, उनकी अम्मी की तीमारदारी भी तो उनकी औरत का ही फर्ज़ होगा ना, हमसे नहीं कहेंगे तो किससे कहेंगे।'

'हद मूर्ख हो तुम। सब पढ़ा पढ़ाया बर्बाद कर दिया तुमने। कोई तुम्हें एक नाते से मार सकता है, कोई दूसरे नाते से। यही पढ़ाया है मैंने तुम्हें।' विवश क्रोध से बिलबिला रही थी मैं।

'चलो FIR कराती हूँ इनके खिलाफ़ तुम्हारे साथ चलकर। पर महसूस तो करो कि ग़लत हो रहा है तुम्हारे साथ।'

'मैम, आपकी क्लास में पढ़ते हुए लगता है दुनिया में हम कुछ लड़कियाँ मिलकर क्रान्ति करेंगी और नई इबारत लिख देंगी पर बाहर की दुनिया और क्लास में बहुत फर्क है मैम।' बिलख उठी थी सलीमा। और बिलख उठा था मेरा मन। पढ़ा कर दुनिया को बदलने की जो मुहीम मैं चला रही थी, आज दरकती हुई लगी थी पहली बार।

सलीमा का कॉलेज आना लगभग छूट ही चुका था, बस इतना ज़रूर हुआ था कि घरवाले आख़िरी साल के आख़िरी इम्तिहान दिलाने को तैयार थे। मुझे उसका हर क्लास में इंतज़ार रहता पर वह नहीं आई। तीन महीने बीत गए, उसकी कोई खोज खबर नहीं थी। देर से आने वाली कोई लड़की जब कमरे में झाँकती तो लगता वही होगी, पर वो नहीं थी। कई फ़ोन भी किए पर उसका फ़ोन लगातार बंद था। उस रात अचानक फेसबुक पर एक मैसेज देर रात को आया.. एक लम्बी चिट्ठी के रूप में।

'आपकी बहुत याद आती है, जावेद मियाँ शादी के लिए जोर डाल रहे हैं। पर घर छोड़कर कैसे जाऊँ, सूट सिलकर कुछ खर्चा निकल रहा है घर का। अब ट्यूशन भी पढ़ा रही हूँ। चली जाऊँ तो इनका क्या होगा? क्या करूँ, बताइए।'

मैं जवाब नहीं दे सकी। उस रात सो भी नहीं सकी। कोई जवाब था ही नहीं मेरे पास। सिर्फ पूछा भर 'पेपर देने आओगी, समय मिले तो मिलना ज़रूर।'

आख़िरी पेपर वाले दिन वो विभाग के बाहर बैचेनी से टहलते नज़र आई, सूखा-मुरझाया चेहरा देख दिल किया, उसे समेट कर ले जाऊँ अपने साथ। पर कुछ कर न सकी। बोली 'मैडम, आगे की पढ़ाई करनी है, जावेद कहते हैं कि अम्मी-अब्बू को मना लेंगे। अम्मी मारती है पर फिर रोती भी है बहुत। अब्बू नहीं मारते, पर अब बात भी नहीं करते। भाई भी बात नहीं करता। मैं बहुत बुरी हूँ ना।' मैं उसे देखती रही देर तक.....

बस इतना ही कहा 'मेरी नज़र में देखो, तुम बहुत अच्छी हो। जब तक पढ़ना चाहो, पढ़ो, मैं साथ हूँ।'

'ठीक है, यही पूछना था कि आप तो मुझे बुरा नहीं मानती ना। अच्छा मैम, किसी से प्यार किया जाए और वो न मिले तो 'गुनाहों का देवता' की सुधा जैसे मरा जा सकता है उसके लिए।' कहती हुई वो तेज़ी से दौड़ती हुई चली गई। मैं कहती रह गई 'नहीं, किसी के लिए नहीं मरा जा सकता। खुद से प्यार कर सलीमा। अपने लिए भी जी...।' पर वो जा चुकी थी।

उसके ख़त आते हैं गाहे-बगाहे.... सलीम मियाँ की शादी को दो बरस बीत चुके हैं। सूट सिलती सलीमा की आँखों पर

चश्मा आ गया है। कोई फ़ोन नम्बर नहीं, कोई पता नहीं मेरे पास। पर वो लिखती है 'आपको कहकर रूह को सुकून मिलता है। देखिए, आप कहती थीं, पहली कैद है- आर्थिक मजबूरी। मैं तो खुद कमा रही हूँ, पर मेरी कैद है ये मजबूर चेहरे, जो मुझे खा रहे हैं दीमक की तरह, और मैं लकड़ी हो गई हूँ। खाने दे रही हूँ खुद को। अब बताइए कि आर्थिक आज़ादी अपने जीवन को चुनने का अवसर सबको देती है? पर आपका पढ़ाया हर शब्द याद है मुझे, मैं सोचती हूँ कभी न कभी मैं आज़ाद होकर दिखाऊँगी।'

मैं सर पटक कर रह जाती हूँ.. मैं पढ़ाती हूँ और सोचती हूँ कि मेरी इस बच्ची के पास चयन क्यों नहीं। हीरामन, पहली कसम उस दिन खाई थी मैंने, अब नहीं कहूँगी लड़कियों को कि आर्थिक आज़ादी तुम्हें जीने की आज़ादी देती है.... परिंदों को इतनी आसानी से कहाँ मिलती है आज़ादी।

वो चली गई, बस उसके खत आते हैं। उसे हर पल याद करके भी मैं फिर अपनी दुनिया में लौटती हूँ। आँखों पर चश्मा चढ़ाए क्लास में जाती हूँ। क्लास खत्म होते ही 'चीना' बाहर मिल जाती है... गुड मॉर्निंग मैम। क्लास की सबसे शैतान लड़की और उतनी ही बुलंद आवाज़। आस-पास के विभागों की लड़कियाँ भी मुड़कर देखती हैं और झेंप कर वे भी गुड मॉर्निंग का बिगुल बजा देती हैं।

'गुड मॉर्निंग चीना। बाहर क्यों खडी थीं,अन्दर आ जातीं। अब तो मैं डाँटती भी नहीं!'

इन दिनों मैंने क्लास में देर से आने वाली ब्रिगेड को डाँटना छोड़ दिया था। अपनी स्थितियों से लड़ती ये लड़कियाँ मेरी पहली कक्षा में भी पहुँच ही जाती हैं। डाँट कर क्या करूँ, मैं तो इनके जज़्बे से ही खिंची चली जाती हूँ इनकी तरफ!

'नो मैम। वो बात नहीं। आज मन ही नहीं था।'

मैं खीज गई, भला ऐसे भी कहता है कोई। 'तो फिर यहाँ क्यों खड़ी हो, जाओ कॉलेज में तो बहुत कुछ है मन लगाने के लिए!'

'नहीं मैम। बात ये है कि मैं बहुत बैचेन थी। क्लास में बात कर नहीं सकती थी और जब तक इस परेशानी से निकलूँ नहीं, पढ़

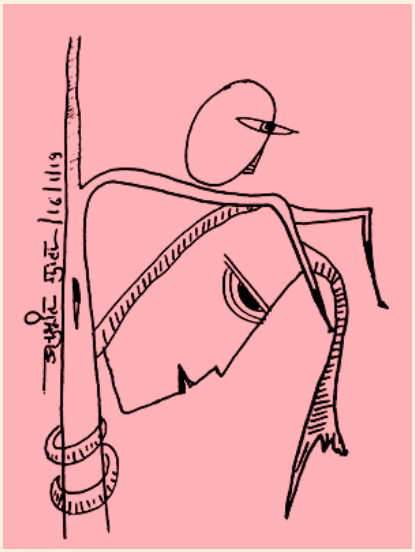

भी नहीं सकती। तो बाहर खड़े होकर आपका इन्तज़ार कर रही थी।'

मैंने घड़ी की तरफ नज़र घुमाई। अगले कुछ ही मिनटों में विभाग में एक ज़रूरी मीटिंग शुरू होने वाली थी। पूछा 'चलते चलते बात कर सकती हो?' जवाब न देकर उसने चलने के लिए कदम बढ़ा दिए। बोली 'मैम धर्मवीर भारती ने बहुत परेशान किया हुआ है इन दिनों।'

अब ठिठकने की बारी मेरी थी। सलीमा दिमाग में फिर कौंध गई। धर्मवीर भारती? आजकल तो हम लोग द्विवेदी जी पर बहस कर रहे हैं क्लास में! 'तुम सिलेबस से हटके कहाँ चली चीना?'

'मैम, क्या कोई लड़की सुधा की तरह हो सकती है? पागल कहीं की! ऐसे कोई किसी से प्यार कर सकता है क्या?वो तुम्हें पूछे ही नहीं और तुम मर जाओ उसके लिए। मुझे बहुत गुस्सा आ रहा है, सुधा पर।'

उफ़,धर्मवीर भारती जी! ये क्या चरित्र रच दिया आपने? मेरी लड़कियाँ इस सुधा जैसी होकर या इस सुधा से लड़कर तुमसे हज़ार सवाल पूछना चाहती हैं। पर आप हैं कहाँ यहाँ, जो इनके सवालों के जबाव दे सकें! ये मुझे ही लहुलुहान करती रहेंगी हमेशा इन सवालों से! मीटिंग और एजेंडा दिमाग से उड़ गए थे।

'चलो, कैंटीन में चलकर चाय पीते हैं। आराम से बैठकर सुनूँगी तुम्हारी बात।' दिल दिमाग दोनों अब कान बन गए थे। जाना ही होगा उसके साथ।

'और आपकी मीटिंग?' चीना ने याद दिलाया।

'पर तुम कहाँ जानती हो चीना, अब मैं चाहकर भी मीटिंग में नहीं जा सकती। तुम्हें सुनकर ही मेरी मुक्ति होगी, सलीमा की भी शायद।'

कैंटीन में चाय का आर्डर देकर हम बैठे तो चीना बहती चली गई। घर-परिवार, खेल-कूद, पढ़ाई-लड़ाई जैसे एक साँस में सब बाहर आ गए। इतनी खिलंदड़ लड़की और अंदर से इतना दर्द! मैं कभी पढ़ ही नहीं पाई। इतनी विद्रोही, इतनी ताकतवर लड़की मेरे सामने बैठी थी, कि उसकी ऊर्जा मुझे भी रोशन कर रही थी। निम्नमध्यवर्गीय परिवार की चीना! शायद मध्यवर्गीय शब्द अतिरिक्त ही लगा दिया मैंने! दो साल पहले मैंने ही उसे दाखिला दिया था। दुबली-पतली बिना माँस की सिर्फ हड्डियों से बनी इस लड़की ने मुझे तब भी आकर्षित किया था- कुछ था उसके चेहरे पर जिसने मुझे मजबूर कर दिया था उसे देखने के लिए। उसके साथ एक लड़का, शायद बड़ा भाई कहकर ही परिचय दिया था उसने। आया था उसे दाखिला दिलाने। साथ में कोई नहीं था और। जैसे हर विद्यार्थी अपना दाखिला करने वाली शिक्षिका से प्रभावित होता ही है, वह भी हुई। 'आप पढ़ाएँगी ना?' मैं मुस्करा दी।

यह चीना ही थी, पिछले दो साल से मेरी कक्षा में पढ़ती और क्लास में धमाल मचाए रखती। पर कब वह मेरे नज़दीक आ गई, मैं जान ही न सकी। और आज, अपनी रौ में बही जा रही चीना मुझसे धर्मवीर भारती की शिकायत कर रही थी! 'क्यों इतनी बैचैन हो चीना?'

'मैम, आप जानती हैं, उम्र के इस दौर में हम सब कुछ नई उमंगे लेकर आगे बढ़ते हैं। कोई दोस्त, जो बहुत प्यारा लगने लगता है और उसके लिए मार-झिड़कियाँ भी सहते हैं। मैं तो उस घर से आती हूँ मैम, जहाँ रातभर रोकर, सुबह ढेर सारा बर्तन माँजकर बिना खाए पढ़ने की ज़िद से निकल पड़ती हूँ। आप कहती हैं पढ़कर दुनिया से लड़ना सीखती हैं लड़कियाँ, तो वही करने हर रोज़ निकलती हूँ। मार खाती हूँ, फिर भी सजती हूँ क्योंकि खुद को यकीन दिलाती हूँ कि ये दुनिया मेरे लिए भी है। ऐसे न करूँ तो मर जाऊँगी।'

उफ़्फ़, मेरा ही कहा हुआ दूसरा वाक्य मेरे सामने इस तरह खड़ा होगा, जानती न थी। भरोसा तो हमेशा ही था शिक्षा पर! पर लड़ने से भी बदल कहाँ रही हैं इनकी ज़िंदगियाँ। पर लड़ने से ही होकर तो रास्ता भी मिलेगा इन्हें।

'जानती हैं मैम, जो भाई बनकर आया था दाखिला दिलाने, उसने कहा कि साहित्य पढ़ते हुए भी तुम मेरे मन की बात न जान सकी! मैं समझता था कि तुम मेरे लिए सुधा हो सकती हो पर पढ़ाई ने तो तुम्हारा दिमाग ही बदल दिया। काश, तुम मेरे लिए जान दे सकती! मैं सब कुछ करता रहा और तुम मुझे समर्पण भी न दे सकीं। कैसे कह सकता है मैम कोई इस तरह? मैं नहीं होना चाहती सुधा? मैं नहीं बनना चाहती ऐसी कमज़ोर लड़की, जो जान दे दे और देवी-देवता बन जाए! मुझे जो चाहिए, मैं खुद पा लूँगी। मैम, इन भाइयों को समझा दीजिए कि हमारा खुदा बनना छोड़ दें। हम इतने भी कमज़ोर नहीं।'

बोलते-बोलते हाँफ गई थी चीना। मैंने हाथ बढ़ा कर उसके हाथ पर रख दिया। लगा, कभी शब्दों की ज़रूरत नहीं होती, कभी शब्दों से परे भी कुछ अहसास पहुँच ही जाते हैं खुद-ब-खुद। सलीमा, तुम बहुत याद आ रही हो, आना मिलने जब समय मिले!

चीना खुश थी, वो कह सकी सब कुछ, जो उसके मन में था। बोली 'मैम, कोई सुनता ही नहीं है हमें। आपसे उम्मीद थी कि आप मुझे सुनेंगी और जज नहीं करेंगी।' चाय खत्म हो गई थी। चीना जा रही थी 'मैम, कुछ टाइपिंग का काम मिला है, आपको भी कुछ कराना हो तो बताना, अच्छा लगेगा मुझे!' मन भीग गया था मेरा, बाहर तेज़ बारिश हो रही थी। जाते-जाते मुड़ी थी चीना 'आपकी बात याद है, पढ़ूँगी भी और लड़ूँगी भी। पर मैम, कभी-कभी बहुत दर्द होता है, सहा नहीं जाता। तब फ़ोन कर सकती हूँ आपको?' उसकी आँख से एक आँसू ढुलक गया था।

हीरामन, यह थी मेरी दूसरी कसम! अब किसी लड़की को नहीं कहूँगी कि पढ़ो और लड़ो, तुम दुनिया बदल सकती हो।

ऐसे ही एक दिन विभाग में बैठी मैं जनवरी की धूप सेंक रही थी। ऐसा कम ही

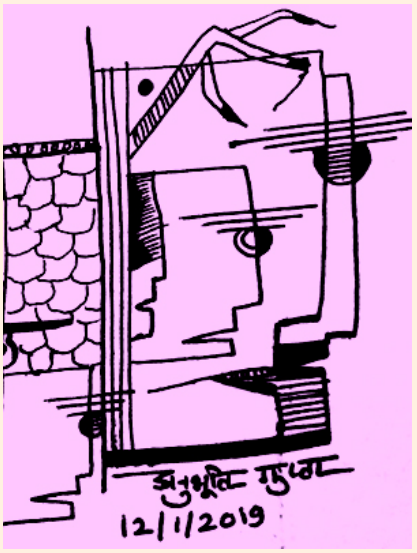

होता है जब विंडो पर विद्यार्थी न हों। पर आज, कुछ ऐसा था कि कुछ देर खाली बैठने का मौका भी मिल ही गया था। बस तभी विंडो पर खटखटाहट की आवाज आई 'मैम, आप बात कर सकती है क्या?' ये तो अनीशा थी अभी छमाही पहले ही तो कॉलेज आई थी। इसे पढ़ाने का तो अभी मौका ही नहीं मिला, फिर?

बात करना चाहती थी।'5 मिनट दे सकेंगी क्या?'

'आती हूँ अनीशा! बाहर बेंच पर मिलिए।'

दो ही मिनट में मैं बाहर खड़ी थी। 'मैम क्या हमेशा अकेली औरत पर ये समाज तोहमत लगाता रहेगा और उसे बर्दाश्त करना होगा?' रेफरेंस नहीं समझ पाई थी मैं।

'क्या हुआ अनीशा? किस कन्टेक्स्ट में बात करना चाहती हो?'

'मैम, मैं यह समझना चाहती हूँ कि क्या हमेशा किसी पुरुष के साये में पल रही औरत को ही सही मानेगा ये समाज? क्या अकेली रहने वाली औरत को हमेशा सफाई देनी होगी कि वह सही है? और फिर वह सफाई क्यों दे इस समाज को? जब वो तकलीफ में होती है तो कौन आता है उसकी मदद को?'

मैं समझ नहीं पा रही थी कि अभी छमाही पहले आई यह बच्ची किस सन्दर्भ और उम्मीद से मेरे पास आई है और क्या कहना चाहती है!

'मैम, सबने कहा कि आपसे बात की जा सकती है, आप सुनती हैं और निर्णय नहीं सुनाती,मतलब हमें जज नहीं करतीं। आप बोलती नहीं, पर साथ खड़ी रहती हैं।' 'मैंने सुना था कि आप क्लास में कहती हैं कि ज़ुल्म सहने वाला ज़्यादा बड़ा गुनाहगार होता है। मेरी बहन लम्बे समय से ज़ुल्म सह रही है, और डरती है कि अगर वो अलग होकर अकेले रहेगी तो समाज उससे न जाने क्या-क्या सवाल करेगा। क्या उसे अकेले रहने और जीने का हक़ नहीं है मैम ?'

मेरे तीसरे सूत्र को आज ये लड़की मेरे सामने रख रही थी। यह सच है कि मैं इस पर भरोसा भी करती हूँ कि ज़ुल्म सहना बुरे की बुराई को बढ़ने देना है। क्लास में अक्सर स्त्री और शोषित वर्ग के बारे में बात करते हुए मैंने यह कहा है। आज ये लड़की मुझसे इस सवाल का जवाब माँग रही थी। कहती है 'मैम अगर आप कहो तो मैं दीदी से बात करूँ, वो हिम्मत नहीं जुटा पा रही। आप उसे थोड़ी हिम्मत दे सकेंगी?'

मैंने सर हाँ में ही हिलाया पर अंदर ही अंदर मैं सोच रही थी' जब वह अनजान लड़की सिर्फ मेरे शब्दों के भरोसे सब कुछ छोड़कर आ जाएगी, तो क्या मैं कदम पीछे हटा सकूँगी?' अनीशा मुड़ी 'मैम दीदी से बात कीजिए। वो फ़ोन पर है...' क्या अब मुझे तीसरी कसम खानी होगी? कहना छोड़ना होगा इन लड़कियों को कि ज़ुल्म सहना बुरी बात है। नहीं हीरामन ये तीसरी कसम मैं नहीं खा सकूँगी। बल्कि पहली और दूसरी कसम भी तोड़ दूँगी, जब तोड़ सकी तो।

हीरामन, क्यों तुमने तीसरी कसम खाई? हो सकता है, तुम इससे न गुज़रे होते तो मैं भी न गुज़रती! पर ऐसा नहीं होता, तुमने कसम खाई कि तुम अब प्रेम नहीं करोगे, पर मैं जानती हूँ तुमने फिर प्यार किया होगा और तुम पहुँचे होगे हीराबाई के पास। तुमने तोड़ी होगी अपनी कसम! हो सकता है तुम इतने मज़बूत हो कि अपनी कसम पर टिके रहे पर मैं नहीं हूँ, कसम बार-बार टूट जाती है, और मैं फिर देखने लगती हूँ इन लड़कियों में किसी सलीमा, किसी चीना, किसी अनीशा को! मैं मुस्काती हूँ क्योंकि जानती हूँ फिर कोई सलीमा मेरा इंतज़ार कर रही होगी। चलती हूँ हीरामन भाई... मुझे भी तो चिठियाँ बाँचनी हैं।

***

हरा पत्ता पीला पत्ता

डॉ. हंसा दीप

क्या कहा जाए जब कहने को कुछ बचता ही नहीं। ज़िंदगी के तमाम दिन आँखों के सामने जुगाली करते रहते हैं। एक के बाद एक, हर दिन सामने आता है और बस झलक दिखला कर चला जाता है। एक असहाय और बेबस बूढ़े की कहानी बहुत ही आसानी से समझ में आती है। तब और भी जल्दी समझ में आती है जब अपना स्वयं का हट्टा-कट्टा शरीर धीरे-धीरे बूढ़ा होने लगता है। ऐसा ही कुछ हुआ उनके साथ भी। अपने जमाने के जाने-माने कॉर्डियोलॉजिस्ट, डॉक्टर एडम मिलर। लोगों के दिल से दिल तक पहुँच कर चीर-फाड़ करने वाले। नए दिल से नए जोश को भरने वाले, जीवन से हारे हुए लोगों को नया जीवन देने वाले।

वे दिन लद गए अब। कभी कुछ सदा के लिए टिकता नहीं। अपनी सफलताओं की आँधी में कब उनका शरीर भी उम्र के अंधड़ में झड़ गया, पता ही नहीं चला। जितनी अधिक व्यस्तताएँ थीं उतना ही अधिक खालीपन भर गया। मानों होड़ लगी हो जीवन के व्यस्त दिनों में और खाली दिनों में कि कौन डॉ. मिलर के साथ अधिक वक़्त बिताएगा।

अब तो बस रह गया एक अकेला ठूँठ सा आदमी, न काम का, न काज का। इन दिनों शरीर के उर्जे-पुर्जे कुछ ज़्यादा ही ढीले हो गए थे। शरीर जैसे हड्डियों का ढाँचा रह गया था। लगता था जैसे हड्डियों से किसी ने माँस निचोड़ कर अलग कर दिया हो ठीक वैसे ही जैसे किसी गीले कपड़े को निचोड़ कर सलवटों के साथ सुखाने के लिए डाल दिया गया हो पलंग के चार पायों के बीच में। अपनी हथेलियों के पीछे देखते तो पच्चीस-पचास हरी-काली नसें ऐसी दिखतीं मानों कि अंदर का पूरा बियाबान नज़ारा बाहर आकर अपनी ख़िलाफ़त पेश कर रहा हो। माँस के लटकते पोपड़े अंदर की हक़ीकत को बयान कर रहे थे जहाँ एक ज़माने की हरी-भरी सल्तनत किसी खंडहर के पथरीले ढेर में बदल गई थी। खंडहर भी ऐसे खंड-खंड थे जो ईंट-ईंट की कहानी कह रहे थे।

जीवन के कई सफल मोड़ देख चुके डॉ. मिलर अब असहाय हैं, बिस्तर पर हैं, बमुश्किल अपनी दिनचर्या के लिए अपने शरीर को ढोते हुए बाथरूम तक जा पाते हैं। एक ही परेशानी नहीं है कि उसे भूल जाएँ, पूरा का पूरा अंबार लगा है परेशानियों का। खाँसी आती है तो बंद ही नहीं होती जैसे अंदर से ज्वार-भाटा भभक-भभक कर चेतावनी दे रहा हो कि ''अब तो इस आग में जल मरोगे।'' नाक बहती तो जैसे अंदर किसी नदी का उद्‌गम हुआ हो वैसे ही उछाल मार-मार कर बाहर आती। ''छीं-छीं'' करते रहते, ''सड़ड़-सड़ड़'' आवाज़ होती तो आसपास से गुज़रते घर वालों की नाक-भौंह ऐसी सिकुड़तीं गोया बूढ़ा होकर उन्होंने कोई अपराध कर दिया हो। हर एक घंटे में पास रखी डस्टबीन पूरी भर जाती। टिशू के डिब्बे खाली होते रहते पर उस छोटी-सी नाक का स्टॉक खत्म ही नहीं होता। आइने में शक्ल देखने का दुस्साहस नहीं कर पाते। वही तस्वीर ज़ेहन में रखना चाहते थे जो उनकी पहचान थी, पोस्टरों पर रहती थी, पावर पॉइंट की स्लाइड्स पर रहती थी, मरीज़ों की आँखों में रहती थी, सुप्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. एडम मिलर के मुस्कुराते चेहरे के साथ।

ताउम्र हज़ारों मरीज़ों के शरीर पर रोगों के आक्रमणों को रोकते रहे वे पर अपनी बढ़ती

संपर्क: 1512-17Anndale Dr.,North York, Toronto, ON - M2 N2 W7 Canada
ई-मेल: hansadeep8@gmail.com

उम्र को रोक नहीं पाए। अपनी बुझती शमा को देखते हुए हर दिन नींद आने से पहले यह सोचते कि – ''शायद आज की रात आख़िरी रात हो।'' और उठते हुए भी यही सोचते कि – ''शायद यह जीवन की आख़िरी सुबह हो।'' लेकिन रातें अड़ियल विचारों की तरह आती रहीं और सुबहें भी बिन बुलाए रोज़ खिड़की से भीतर झाँकती रहीं। दिन भी निकल जाता, रात भी निकल जाती। एक और दिन मुँह बाए खड़ा होता उनके सामने, पहाड़-सा दिन, पल-पल काटे नहीं कटता।

इस मन की हार के चलते एक दिन एक विचित्र प्रस्ताव आया उनके सामने। पास वाले फ्लैट में एक छोटा बच्चा रहता था। साल भर का होगा। इससे ज़्यादा भी नहीं था, न ही कम था। न ही साल भर से बड़ा होगा न ही उससे छोटा। उसकी मम्मी अभी भी मेटरनिटी लीव पर थी। मम्मी की समस्या यह थी कि जब वह नहाने के लिए जाती तो उसके बच्चे को देखने वाला कोई नहीं था। एक दो बार उसे सुला कर गई थी नहाने तो वह बीच में ही इतनी ज़ोर से चिल्लाया था कि बेचारी को बहते पानी के साथ बाहर आना पड़ा था।

यही नहीं उसने एक अखबार में पढ़ा था कि एक बार न्यूजर्सी में एक बच्चे की बेबी सीटिंग कर रही दादी उसे छोड़ कर नहाने गई तो बच्चा इस कदर रोया कि पड़ोसियों ने पुलिस को सूचना दे दी। पुलिस आई और अकेले बच्चे को रोते देखकर दरवाज़े को तोड़कर अंदर जाने की कोशिश करने लगी। शोरगुल सुनकर जब दादी बाथरुम से बाहर निकली तो देखा कि रोते बच्चे को बाहर जाली से झाँकते दो पुलिस वाले चुप कराने का प्रयास कर रहे थे। वह घटना मम्मी अपने घर में दोहराना नहीं चाहती थी। उसे इसका उपाय सूझा कि पास वाले अंकल मिलर तो पलंग पर ही रहते हैं अगर वे उसे थोड़ी देर देख लें तो वह शांति से नहाकर वापस आ सकती है। कुछ रोज़मर्रा के ज़रूरी काम निपटा सकती है। नहाने के बहाने के साथ अपने लिए थोड़ा सा समय चुरा सकती है।

इसके अलावा जल्द ही उसे काम पर वापस जाना होगा तो बच्चे को डे-केयर में रहने की थोड़ी आदत हो जाएगी। साल भर से दिन-रात माँ के साथ है और अब तो वैसे भी माँ के आँचल में रहने का समय खत्म होने ही वाला है। अनजान लोगों के साथ समय बिताना उसे सीखना ही होगा। ऐसे कई ख़्यालों का एक ही हल नज़र आया था उसे, अंकल मिलर।

इसी ऊहापोह में अपनी इस छोटी-सी बात को मम्मी ने अंकल मिलर के सामने रखा। उन्होंने तत्काल मना कर दिया – ''नहीं बिल्कुल नहीं'' अपनी असहाय स्थिति का ज़िक्र किया – ''खुद को तो सम्हाल नहीं पाता बच्चे को कैसे सम्हालूँगा!''

''आपको कुछ नहीं करना है। मैं उसे उसके स्ट्रोलर में बैठाकर छोड़ दूँगी, बेल्ट से बंधा रहेगा वह, गिरने का भी डर नहीं रहेगा।''

''और अगर वह रोने लगा तो?''

''कोई आसपास नहीं दिखता है तो रोता है वह, आप सामने रहेंगे तो नहीं रोएगा।''

''अच्छा!'' वे आश्वस्त नहीं हो पाए यह सुनकर। अचंभित-से उसे देखते हुए बच्चे को यहाँ न छोड़ने का कोई कारण खोजने लगे।

मम्मी भी शायद तय करके आई थी कि एक बार तो कोशिश करके देखा ही जाए। अगर घंटे भर की राहत मिल जाए तो फिर से तरोताज़ा होकर कई काम कर सकती है। कहने लगी – ''बस अगर थोड़ा बेचैन होने लगे तो उसे झुनझुने से खिलाएँ या बात करें ताकि उसे कम से कम यह न लगे कि वह अकेला है और चिल्ला-चिल्ला कर रोने न लगे।''

अंकल मिलर ने सोचा इतना तो वे कर ही सकते हैं। एक कोशिश करने में क्या बिगड़ता है। अगर बच्चा रोएगा तो फिर तो बात वहीं खत्म हो जाएगी। तो शुरू हुआ यह सिलसिला। पहले एक-दो दिन तो वह सो गया लेकिन उसके बाद वह उन्हें ध्यान से देखता, देख कर कभी हँसता तो कभी बात करने की कोशिश करता लेकिन एक बार भी रोया नहीं।

वह रोज़ आने लगा। धीरे-धीरे खेलने के लिए वह उनमें साथी ढूँढ़ने लगा। कभी ''पीक-ए-बू'' करता तो कभी उनके हाथों में अपना हाथ देकर कुछ ''गुटर-गूँ'' करता। हर बार कुछ कहते हुए किलकारियों से कमरा गूँजा देता। सन्नाटों के बीच उस बच्चे की आवाज़ वैसी ही थी जैसे भयंकर सूखे के बाद धरती ने बरसती बूँदों का आस्वादन किया हो। ''हाइ-फाइव'' के लिए वे हाथ पास ले जाते तो वह भी वैसे ही नाटकीय अंदाज़ में ''हाइ-फाइव'' करता, उसी प्रक्रिया को दोहराता। हथेली से हथेली का स्पर्श अंदर तक महसूस होता, कुछ देते हुए कुछ लेते हुए। शब्द उसकी ज़बान पर होते पर आकार नहीं ले पाते लेकिन वह अस्फुट स्वर में कुछ कहने की कोशिश करता रहता। ऐसा लगता जैसे आपबीती सुना रहा हो आज की, कल की और उन सब दिनों की जो उसे याद आते, जो उसकी स्मृति में थे।

संवाद स्थापित करने के सारे प्रयास उसकी ओर से होते। वे कब तक चुप रहते, कब तक अपनी चुप्पी को ओढ़े रहते। एक ओर जहाँ उनके दिमाग में चिकित्सा की किताबों के कई पन्ने भरे हुए थे, कई थीसिस लिखी जा चुकी थीं, किताबें और शोध-पत्र लिखे जा चुके थे तो वहीं उस बच्चे को अभी ''ए-बी-सी-डी'' सीखनी थी। एक के पास जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों की थाती थी तो दूसरे के पास यह पहला अनुभव था घर से बाहर जाकर कुछ सीखने का, कुछ बताने का। एक वह था जो दुनिया को देखना शुरू कर रहा था और एक वे थे जो बहुत कुछ देख चुके थे।

आख़िरकार वे भी बोलने लगे। अपनी ओर से कुछ बोलते-कहते-समझाते। वह मस्ती में आवाज़ निकालता तो वे कहते – ''तुम भी वहाँ कैद हो मैं भी यहाँ कैद हूँ।''

''हूँ-हूँ-कूँ...''

''आज़ादी नहीं है हम दोनों को। तुम्हें मिल नहीं सकती और मेरी आज़ादी सिमट गई है इस चारपाई में।''

वह भी कहता बहुत कुछ – ''आ-आ-ए-ए''। हर आवाज के साथ उसके हाथ भी हिलते, आँखें बोलतीं, अंदर से मन की आवाज़ बाहर आकर समझाती। बगैर शब्दों के दिल की बात कही जाती, वे अनकहे शब्दों के अर्थ समझ लेते। जवाब में वे भी कहते, बड़ी-बड़ी बातें जो उसके लिए ''आ-आ-ए-ए'' जैसी ही थीं पर उसकी आँखें स्वीकारतीं, सब कुछ समझ लेने का आश्वासन देतीं।

वे कहते जाते – ''बेटा, छोटा रहना ही

अच्छा है बड़े मत होना।''

अपनी गहन समझदारी उस पर थोपना चाहते तो वह सिर हिलाता, इनकार करता जैसे कह रहा हो – ''मैं बड़ा होना चाहता हूँ। इस कैद से बाहर जाना चाहता हूँ। लेकिन तुम तो बड़े हो, तुम क्यों यहाँ हो?''

''मैं यहाँ नहीं हूँ बच्चे, मैं तो कहीं भी नहीं हूँ।'' वे अपने बेचारेपन को बाहर आने से रोक नहीं पाते।

''पर मैं तो तुम्हें देख रहा हूँ, तुम यहाँ हो, यहीं तो हो मेरे सामने।''

''तुम जिसे देख रहे हो वह मैं नहीं हूँ, मैं तो डॉ. एडम मिलर था, अब नहीं हूँ।

''नाम में क्या रखा है, तुम तुम हो मैं मैं हूँ...''

''हाँ लेकिन मैं न चल सकता हूँ न मरीज़ों को देखने जा सकता हूँ।''

''तुम चलते थे? मैं भी चलना चाहता हूँ, दौड़ना चाहता हूँ, तुम मुझे सिखाओगे?''

''हाँ, सिखाता ज़रूर लेकिन मैं इस कैद से बाहर आ नहीं सकता, बच्चे।''

''अच्छा कोई बात नहीं मुझे बोलना सिखा दो, मैं बोलना चाहता हूँ पर बोल नहीं पा रहा, शब्द नहीं हैं मेरे पास।''

''हाँ, मैं तुम्हें बोलना सिखा सकता हूँ क्योंकि मैं बोल सकता हूँ। मेरे पास बहुत शब्द हैं पर सच कहूँ तुम्हें, मेरी बोलने की इच्छा ही नहीं होती। तुम तो बिना शब्दों के ही बोल रहे हो बहुत कुछ।''

''मेरी तो बहुत इच्छा होती है बोलने की। ऐसा कैसे हो सकता है कि बोलना आता हो पर इच्छा नहीं हो रही बोलने की तो मत बोलो।''

''ऐसा तब होता है जब तुम बहुत बोल लेते हो और एक दिन कोई तुम्हें सुनने वाला नहीं होता है तो चुप रहने में ही भलाई नज़र आती है।'' वे अपने होठों को सिल कर ताला लगाने की मुद्रा में चाबी को फेंकने का उपक्रम करते हैं।

वह अनायास ही हँस पड़ता है शायद कहता है – ''तुम कैसी बातें करते हो। तुम बहुत फनी हो....'' वह हँसता है, दिल खोलकर हँसता है।

और फिर ज़ोर लगाता है। इतना ज़ोर लगाने से उसका मुँह फैल जाता है। हर कोई ऐसे ही मुँह फैलाता है जब अपने पेट की सफाई हो रही हो। जोर से पू-पड़ड़ड़-पड़ड़ आवाज़ आती है – ''तुमने पोटी कर दी?''

''हा-हा-हा-हा, देखो मैं पोटी करके भी हँसता हूँ।'' वह हँसता है बहुत ज़ोर से, किलकते हुए ऐसी निश्छल हँसी जो उन्हें खुश कर देती है।

वे भी हँसते हैं दिल खोल कर – ''शैतान, देखो पोटी करके हँस रहा है...!''

वे ज़बान निकालते हैं – ''गंदी बात'' कहकर तो वह भी वही करता है अपनी छोटी-सी बित्ते भर की जबान को खींचतान करके बाहर ले आता है ''गंदी बात'' के साथ उसकी नाक सिकुड़ती है और वह फिर हँसता है। वे नाक सिड़कते हैं तो वह भी नाक को मलते हुए आवाज़ निकालता है। वे खाँसते हैं तो वह भी ''खुड़-खुड़'' करता है।

''देखो तुम नकल उतार रहे हो... नकलची बंदर...।''

वह भी हाथों को सिर तक ले जाकर दोहराता है ''नकलची बंदर।''

दोनों की आँखों से बातें हो रही हैं। दोनों हँस रहे हैं। शब्दों की बहुलता और शब्दों की अनभिज्ञता दोनों मिलकर एक संवाद स्थापित कर लेते हैं। उन्हें अच्छा लगता है। ''मैं मैं हूँ, तुम तुम हो'' सुनना सुकून भरा था। अपने नाम के मोह से बाहर निकलने की कोशिश में खिड़की से बाहर का आकाश बहुत दिनों में दिखाई देता है। अंदर का सारा ज्ञान उछाल मारने लगता है – ''मैं तुम्हें मेडिकल साइंस की बहुत सारी बातें बताऊँगा।''

वह सिर हिलाता है जैसे खुद को तैयार कर रहा हो गंभीर बातें सुनने के लिए। लेकिन इस समय आगे की गहन चर्चा से वह बच जाता है क्योंकि उसकी मम्मी आती है और ले जाती है उसे। वह जाना नहीं चाहता। ''बाय'' कहते हुए पलट-पलट कर देखता है।

''कल फिर आना।''

''थैंक यू अंकल मिलर।'' मम्मी के लिए यह बड़ी मदद थी। यह समय का वह हिस्सा था जो उसके लिए एक अमूल्य तोहफा था वरना रोज़ उसकी चिल्लपों में खुद के लिए कुछ समय चुराना भी मुश्किल था।

अब उन्हें कल का इंतज़ार है। ठीक उसी समय फिर से मम्मी आती है व उसे छोड़ जाती है। वे दोनों बेहद खुश हैं। दोनों हँस रहे हैं। इस दोस्ती ने उन्हें ताकत दी है। वे उठने लगे हैं। चलने लगे हैं। इतने दिनों तक जो पैर ज़मीन छूने से कतराते थे, पलंग में धँसे रहते थे वे अब ज़मीन पर हैं, हरकत में हैं। खाँसी तो अब भी आती है पर किसी आग में जल मरने का संकेत देते हुए नहीं बल्कि एक शरीर की आवश्यक आवश्यकता के साथ। नाक का आवेग भी अब उनके नियंत्रण में है। पैरों की बढ़ती ताकत शरीर का सारा भार अपने ऊपर लेकर संतुलन बना रही है।

एक दिन हाथों ने भी पैरों का अनुसरण किया। उसे स्ट्रोलर से निकाल कर चलाने लगे। अब दोनों स्वतंत्र थे। दोनों निरीह नहीं थे अब। एक-दूसरे को समझने लगे थे, एक-दूसरे की सामर्थ्य को अपनी ताकत बना रहे थे। एक घेरा शून्य का था जिससे वे अपने नंबर बनाने लगे थे। किसने किसको चलना सिखाया यह प्रश्न कतई नहीं था, प्रश्न तो यह था कि किसने जल्दी सीखा। दोनों ने एक दूसरे को चलना ही नहीं सिखाया बल्कि हर ठोकर पर हाथ थामना भी सिखाया।

उनकी यह दोस्ती उन दो इंसानों की दोस्ती है जो हमराज़ हैं, रोज़ मिलते हैं, बातें करते हैं, एक दूसरे से सीखते हैं बहुत कुछ। ऐसे दोस्त हैं जो हँसते बहुत हैं, छोटी-छोटी बातों पर ठहाके लगाते हैं। जब कुछ नया करते हैं तो भी हँसते हैं और जब कुछ नहीं कर पाते हैं तो और भी दिल खोल कर हँसते हैं।

वह हँसी जो सारी दुनिया के बोझ को हल्का कर देती है, वह हँसी जो अपनी असामर्थ्यता को स्वीकार करने में मदद करती है, वही हँसी जो रास्तों की रुकावटों से जूझ कर गिरते-पड़ते उठने का साहस देती है। उम्र के अंकों से परे दो शिशु या फिर दो वयस्क।

हरे पत्ते और पीले पत्ते की जुगलबंदी ने एक नए रंग को जन्म दे दिया था जो सिर्फ खुशियों का रंग था, एक अपनी हरीतिमा पर खुश और एक अपनी पीलिमा पर।

***

शेरा और मैं

उमेश अग्निहोत्री

उसकी ही हिम्मत थी कि जब चपरासी ने आ कर उससे कहा कि साहब बुला रहे हैं, उसने कहा – कह दो, मैं चाय पी रहा हूँ।

उसके बाद उसने सिगरेट सुलगा ली। फिर धीरे – धीरे सिगरट के कश लेने लगा जैसे सिगरट पीना जानबूझकर लम्बा खींचता जा रहा हो, और मन ही मन इस बात का मज़ा ले रहा हो कि अपने कमरे में बैठा डायरेक्टर –एकांउट्स, आर.एन. नाग उसकी प्रतीक्षा में नथुने फुलाए किस तरह मन ही मन उसे कोस रहा होगा, 'देखो बेशर्म, इतना भी लिहाज़ नहीं है कि जो शख्स ऑफ़िस की क्रिकेट टीम के लिए बजट सैंक्शन करता है, उसकी थोड़ी इज़्ज़त ही रख ले।'

वह हमारी ऑफ़िस की क्रिकेट टीम का कप्तान था। वह ऑल राउंडर था। मतलब बल्लेबाज़ भी, गेंदबाज़ भी और बढ़िया क्षेत्र रक्षक भी। गेंदबाज़ी करते हुए वह सामने खड़े बल्लेबाज़ का कमज़ोर पहलू पहले देखता था और फिर तय करता था कि उसने किस तरह की गेंदबाज़ी करनी है। बल्लेबाज़ी करते हुए वह गेंदबाज़ के हाथ से गेंद के निकलते ही पहचान लेता था कि वह किस तरफ घूम रही है, वह कितनी तेज़ है या कितनी धीमी, तब बढ़िया टाइमिंग से शॉट लगाता था। क्षेत्र रक्षण का काम तो उसका ऐसा था कि उसने कभी कोई कैच नहीं छोड़ा था। वीक-स्पॉट पहचानने की अपनी यह विशेषज्ञता वह जीवन के अन्य स्थितियों में भी इस्तेमाल करता था। नाग के साथ भी उसने यह ही किया था। नाग हमारा अफ़सर था। एक बार उसने नाग को देखते हुए हवा में हाथों से ऐसी मुद्रा बनाई मानों कवर की तरफ चौका लगाया जा रहा हो। वह जान गया कि नाग अफ़सर ज़रूर है, लेकिन उसके ज़हन में कहीं क्रिकेट खेलने का कीड़ा कुलबुला रहा है। उसने नाग को क्रिकेट खेलने का न्योता दिया ? नाग ने क्रिकेट के कपड़े सिलवाए, जूते खरीदे, और प्रेक्टिस के लिए नेट्स पर भी आया। लेकिन जिस दिन मैच था, उसने टीम में नाग के नाम के आगे लिखा बारहवाँ खिलाड़ी। डायरेक्टर और 12 वाँ खिलाड़ी ! नाग को इस की उम्मीद न थी। उसने कभी सोचा न था मैच खेलने के नाम पर, ड्रिंक्स के ब्रेक के दौरान ही उसे मैदान में जाने का मौका मिलेगा, और हम खिलाड़ियों को, जिनमें अधिकतर हम क्लर्क ही थे, उसे पानी पिलाना पड़ेगा।

वह अक्सर इसी तरह की हरकतें करता था। अफ़सरों के साथ तो खासतौर पर। वह कहता था पता नहीं ऊपरवाले हमें अपने बराबर कब मानेंगे, उन्हें अपने बराबर लाने का एक तरीका यह भी है कि अफ़सरों ने अपने इर्दगिर्द जो प्रभामंडल बना रखा है, उसे भेदते रहो। उन्हें अपने बराबर का समझो। एक बार ऑफ़िस के मैन्स रूम में उसकी नाग से भेंट हो गई। दोनों का मुँह दीवार की तरफ़ था, वह बोला, यह जगह बढ़िया है। यहाँ अफ़सर और क्लर्क दोनों बराबर हैं।

उसके इस आचरण का सैक्शन के हम क्लर्क मज़ा लेते थे। नाग साहब के सामने हमारी

संपर्क: 4200 Mozart Brigade La, Unit F, Fairfax, Va 22033, USA
ई-मेल:agnihot@gmail.com

अपनी भले ही सिटी-पिट्टी गुम हो जाती हो, लेकिन जब वह उनके कमरे में जा कर बराबरी के अंदाज़ में कहता, ''...वह चाय का कप पकड़ाना'', तो सारे स्टाफ को बड़ा मज़ा आता था। मज़ा मुझे भी आता था, पर थोड़ा कम। मैं परेशान कुछ ज़्यादा हो जाता था। उसका कारण शायद यह था कि उसकी सोहबत में रहते-रहते मैं भले उसी की तरह दिलेर बनना चाहता था, पर हकीकत यह थी कि मैं अंदर से था कुछ दब्बू - डरपोक, जो संस्कार मैंने अपने परिवार से पाए थे। मेरे कुछ संबंधी ऊँचे पदों पर थे। मैंने उनका आदर सम्मान होते देखा था। उसी के परिणामस्वरूप ऊँचे पदाधिकारियों का सम्मान करने के संस्कार मेरे व्यक्तित्व का हिस्सा बन चुके थे।

क्रिकेट के मैच के दिन भी जब उसने नाग साहब को बारहवाँ खिलाड़ी बनाया था तब भी मैं मन ही मन खुश होने के बावजूद परेशान अधिक था। मैंने उससे विनती की थी, ''मेरा नाम बारहवाँ कर दे यार, मेरी जगह नाग को खिला दे।'' पर वह बोला था, ''नहीं।''

इस वक्त भी जब तक वह सिगरट के कश लेता रहा था मुझे घबराहट होती रही कि अभी नाग साहब बाहर आएँगे और अच्छा-खासा कांड खड़ा हो जाएगा। मैं यह मानता था कि वह बेहतर खिलाड़ी था, बातचीत में ज़्यादा तेज़ तर्रार और आचार-व्यवहार में ज़्यादा आत्मविश्वासी भी, लेकिन मुझे लगता था कि कम से कम दो मामलों में मैं भी इज़्ज़त पाने का हक़दार हूँ। एक तो उम्र के लिहाज़ से, और दूसरे विभाग में उससे सीनयर होने के नाते। मैं पच्चीस-छब्बीस का था, वह शायद बाइस-तेइस का रहा होगा। विभाग में वह मेरे से तीन साल जूनियर था। अपनी उम्र और सीनियोरिटी के आधार पर मैंने उसे प्यार से समझाया, ''यार नाग साहब बुला रहे हैं, क्यों बेकार में पंगा ले रहा है। चला जा।''

उसने अपनी आँखों पर लगी ऐनक ठीक की, भवें चढ़ाईं, ''देख नहीं रहा, सिगरट पी रहा हूँ।''

मैं जानता था कि वह सही मायनों में सिगरट का धुँआँ अंदर खींचता नहीं था। सिगरट मुँह से लगाना मानों अफ़सरों के प्रति अवज्ञा प्रदर्शन करने का ढंग था। मैंने कहा, ''यार ऑफ़िस में अनुशासन होना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे क्रिकेट के मैदान में होता है। खेल में क्या हम वह नहीं करते जो तू कहता है ?''

''तो जा, तू चला जा।''

वह सिगरट के झूठ-मूठ कश लेता रहा। मेरे दिल में धुकधुकी होने लगी। मैं नाग साहब के कमरे के दरवाज़े की तरफ बार-बार देखने लगा और सोचने लगा कि नाग साहब अभी बाहर आएँगे और उन दोनों के बीच तकरार शुरू होगी।

मेरे लिए इस तरह की स्थिति बहुत ही कठिन होती। वह कनखियों से देखता रहता कि जब नाग और उसके बीच बात होती है तो मैं किस का पक्ष लेता हूँ। चूँकि दिन का अधिकतर समय मेरा उसके साथ ही बीतता था, वह मेरा अंतरंग दोस्त सा बन गया था। वह मुझ से उम्मीद रखता कि मैं उसका साथ दूँ। मैं देना भी चाहता था, बल्कि एक बार अपने कमरे मे बुला कर नाग साहब ने मुझे जैसी फटकार सुनाई थी, मैं चाहता था कि उसका बदला लूँ। न ले पाऊँ, मेरी जगह मेरा मित्र ही नागसाहब की खिंचाई कर दे, मेरा कलेजा उससे ही ठंडा पड़ सकता था।

नाग साहब हाथ-पैर झटकते-पटकते बाहर आए। एक हाथ में फाइल। बिफरते हुए बोले, ''यह दफ्तर है या तमाशा। मज़ाक बना रखा है..'' और इससे पहले कि नाग साहब आगे कुछ कहते, वह बोला, ''शांत, शांत, नाग शांत।'' फिर उसने अपनी सिगरट से दूसरी सिगरट सुलगा ली, और बोला, ''क्या बात है राम नाथ।''

डायरेक्टर को ही नहीं, वह महानिदेशक को भी उसके नाम से पुकारता था। मुझे तो लगता है कि अगर उन दिनों के वित्त मंत्री टी टी कृष्णामाचारी से भी कहीं उसकी भेंट हो जाती तो उन्हें भी वह टीटीके कह कर ही बुलाता, मानों वह प्रधान मंत्री और टीटके उसकी केबिनेट में एक मंत्री। वह नाम के साथ सम्मान सूचक शब्द 'जी' इत्यादि लगाने में विश्वास नहीं करता था। वह किसी अधिकारी को आप या 'सर' कह कर भी संबोधित नहीं करता था, नाग को तो 'सर' क्या ही कहता। उसका मानना था कि हिंदी भाषा में तू, तुम और आप के सम्बोधन समाज में गहरे तक जमें भेदभाव के पोषक हैं।

जिस तरह से नाग साहब का ऊपर का होंठ एक तरफ से कुछ और ऊपर चढ़ गया था, उस से साफ़ ज़ाहिर था कि सारे स्टॉफ़ के सामने उन्हें अपना नाम लिया जाना बेहद अपमानजनक लगा है, और वह मन में सोच रहे हैं कि कैसे बेहूदा, बेशऊर, बेशर्म इंसान से उनका पाला पड़ा है। उससे दूरी बनाए रखने के उद्देश्य से वह उसे आप कह कर ही संबोधित करते थे, उसके नाम के साथ 'जी' 'सर' लगाते रहे थे, तो भी वह उन्हें तुम ही पुकारता चला जाता था।

नाग साहब की अजीब मुश्किल थी। अगर उसकी बदतमीज़ियाँ बरदाश्त करते, तो सैक्शन के बाकी क्लर्कों को भी छूत की यही बीमारी लग सकती थी। वे भी उनसे उसी तरह निर्लज्ज तरीके से बात करने लग सकते थे।

उसकी गैरमौजूदगी में एक बार भन्नाते रहे थे, 'कप्तान होंगे आप फ़िरोज़शाह कोटला ग्राउंड में, इस सैक्शन में नहीं। क्रिकेट में भले ही बारहवाँ खिलाड़ी होता है, बारहवें को भले ही बाहर बिठाने का नियम हो, पर इस सैक्शन में सब बराबर हैं। काम सबको करना पड़ेगा। जो काम नहीं करेगा उसके खिलाफ़ कारवाई की जाएगी।'

लेकिन उनके मन कहीं यह खौफ़ था कि कहीं वह उन्हें बारहवें से भी बाहर यानि एक्स्ट्रा ही न बना दे। इस वक्त वह बोले,''लोग इस तरह बैठे रहते हैं जैसे दामाद हों।''

वह हँसा, कुछ इस अंदाज़ में जैसे क्रिकेट के खेल में किसी गेंदबाज़ ने बहुत ही लचर गेंद फेंकी हो, बिलकुल लड्डू। ठहाका लगाते हुए बोला, ''बिलकुल। राम नाथ, हमारे समाज की यह ही मुश्किल है। हर कोई अपने को दामाद समझता है। दामादों की तरह हुक्म चलाता है।''

मैं समझ गया अब वह नाग की कमज़ोर गेंदों पर मीठे-मीठे अंदाज़ में दो - चार चौके और जड़ेगा। मैं कमरे से बाहर निकलने के लिए फाइलें टटोलने लगा। नाग का अकड़फूँ अंदाज़ पसंद न होने बावजूद मैं उसका अपमान होते देख नहीं पा रहा था। कारण वही, मेरे संस्कार। मैं किसी भी मातहत को किसी अफ़सर के साथ ज़बानदराज़ी करते नहीं देख सकता था। मैंने एक फ़ाइल उठाई और कमरे से बाहर

निकल गया। वह पीछे से मुझे आवाज़ लगाता रहा, लेकिन मैं नहीं रुका।

जब मैं लौट के आया, नाग साहब अपने कमरे में लौट चुके थे। और वह अपनी कुर्सी पर बैठा सिगरट के छल्ले बना रहा था। कुछ क्लर्क उसे घेरे खड़े थे। दबी-दबी आवाज़ें आ रही थीं - क्या बात है शेर। यार तुमने तो गज़ब कर दिया ..।

उसने मेरी ओर मुँह करते हुए औरों से कहा, ''एक यह हैं मेरे दोस्त, खुद तो बल्लेबाज़ी क्या करेंगे, दूसरे को भी करते देख नहीं सकते।''

उसने मेरा हाथ पकड़ा। जब तक मुझे समझ आया कि वह क्या कर रहा है, और मैंने कहना शुरू किया, मेरा हाथ छोड़, अचानक मैंने पाया कि मैं उसके साथ नाग के कमरे में था। वह नाग को संबोधित करते हुए बोला, ''नाग, यह कह रहा था कि मैं इसकी तरफ से तेरे से बदला लूँ।'' और वह ज़ोर से हँसा, नाग साहब भी हँसे। मैं पानी-पानी हो गया।

फिर वह नाग साहब से बोला, ''नाग, एक बात है, उसके लिए मैं तुमको दाद देता हूँ।''

''किस बात के लिए?''

''कि तुम अच्छे खिलाड़ी हो।''

''क्या मतलब ?''

''यही कि तुम अभी तक जमे हुए हो। कई अफ़सर आए, कइयों ने ऊपर जा कर तबादले करवा लिए, मैदान छोड़ गए, कुछ तो आज भी बदतमीज़ समझ कर मुझे सामने से आता देख कर रास्ता बदल लेते हैं। पर तुम ! मानता हूँ, तुम में लम्बी पारी खेलने का स्टैमिना है।'' फिर ठहाका। उसने अपना वाक्य पूरा किया, ''और एक यह है मेरा दोस्त।'' उसने मेरी तरफ देखा,''कहता है मेरी जगह तू खेल। मुझे कह रहा था मैं इसकी तरफ से तुम से बदला लूँ।'' वह बहुत ही ज़ोर से हँसा। ''जिस टीम में इस जैसे खिलाड़ी होंगे वह खाक जीतेगी। मैच तब जीता जाता है जब दूसरे को कागज़ का शेर समझो। नहीं समझोगे तो कागज़ के शेर मैदान में छलाँगें लगाएँगे, और तुम बाहर।''

कह कर वह कमरे से बाहर जाने को हुआ कि अचानक पलटा,''नाग, यार एक लतीफ़ा याद आया। तुम्हें पसंद आएगा।''

उसने नाग की मेज़ के पास रखी कुर्सी

खींची और बैठ गया। उसने मुझे भी बैठने का इशारा किया। मैं भी बैठ गया।

वह बोला, ''एक बादशाह किसी दूसरे देश से आए प्रतिनिधिमंडल से बात कर रहा था। बादशाह का अनुचर भी उसके साथ खड़ा था। अचानक क्या हुआ कि बादशाह को लगा कि उसे हवा खारिज करने की ज़रूरत है। ....हवा खारिज करना मतलब पादना। बादशाह को लगा बगैर हवा खारिज किए उसका निस्तार नहीं है। उसने हवा खारिज की। जैसे ही उसने हवा खारिज की, उसका अनुचर 'माफ़ कीजिए' कहते हुए कमरे से बाहर चला गया। उसको बाहर जाते देख प्रतिनिधिमंडल को लगा कि वह भद्दी, निकृष्ट हरकत बादशाह के अनुचर ने की है। जब प्रतिनिधिमंडल चला गया तो अनुचर बादशाह के कमरे में आया और बोला, हुज़ूर सौ अशर्फियाँ अता फरमाएँ। बादशाह ने कहा, किस लिए ? अनुचर ने कहा - पादा आपने, बदनामी मैंने अपने सिर ली।''

नाग साहब की हालत देखते ही बनती थी। मुँह खुला का खुला, समझ नहीं आ रहा था कि लतीफ़ा सुन कर वह हँस रहे हैं या अवाक् हैं। शालीनता का तकाज़ा था कि किसी दूसरे ने लतीफा सुनाया है तो हँसे, नहीं तो कम से कम मुस्कुरा तो दें ही। कोई बराबर का ओहदेदार मित्र, या उनका ही अफ़सर उन्हें यह लतीफ़ा सुनाता तो यह निश्चित था कि परस्पर संबंधों के स्तर के एतबार से वह कुछ कम या ज़्यादा मिकदार में हँसते भी। लेकिन एक क्लर्क उन्हें ऐसा निकृष्ट लतीफ़ा सुनाए, उन्हें समझ नहीं आया कि वह क्या करें। मेरी भी अजीब स्थिति हो गई। मुझे वह यह लतीफ़ा कई बार सुना चुका था। और मैंने उसका पूरा मज़ा भी लिया था, लेकिन जब वह नाग साहब को सुना रहा था ....मुझे काटो तो खून नहीं।

मैं और नाग दोनों सोच रहे थे कि इस लतीफ़े का हम से क्या संबंध है ? ...और वह था कि क्रिकेट के खेल की ही तरह नाग साहब की लैंथ बिगाड़ कर, उसके बाद खेल के नियम, कायदे-कानून तोड़ ऐसी धुँआधार बल्लेबाज़ी कर रहा था कि खुद रिटायर हो तो हो, न तो नाग उसे आउट कर सकता था, और न ही मेरी हिम्मत थी कि उसे पव्लियन वापस चलने के लिए कहूँ।

नाग के कमरे से बाहर आकर वह मुझ से बोला, ''टीम में रहना है, तो मर्द बन मर्द। उसके लिए अफ़सर होना ज़रूरी नहीं है।''

आप निस्सन्देह उसका नाम जानना चाह रहे होंगे। हम क्लर्कों के बीच, वह शेर के नाम से जाना जाता था। जब वह दफ़्तर पहुँचता था तो क्लर्कों के बीच में से किसी की आवाज़ ज़रूर आती थी - शेर आ गया। वह इसलिए कि वह किसी से डरता नहीं था। चेहरे पर कार्ल-मार्क्स सरीखी दाढ़ी - मूँछ अलग। उसे देख मैं कभी-कभी सोचता कि वह भी मेरी तरह एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार से था, तो फिर उसके व्यक्तित्व में यह निडरता, यह विद्रोही तेवर आया कहाँ से! मैं दो-चार बार उसके घर भी गया। उसके एक कमरे के घर और तीन प्राणियों के परिवार को देख कर मुझे लगा था कि अतीत में उन सब के साथ कहीं कोई बहुत बड़ा हादसा गुज़रा था या कोई बहुत बड़ी बेइंसाफ़ी हुई थी जिसने उसके पिता को तोड़ दिया था, माँ को अतिधार्मिक और शेर को विद्रोही बना दिया था।

नाग साहब तो क्या, हमारे महकमें के महानिदेशक के साथ जो उसने किया वह तो बस ग़ज़ब ही था। महानिदेशक विष्णु शर्मा अचानक गेरुए वस्त्र पहनने लगे थे। हमारे दिलों में उनके लिए पहले ही बहुत सम्मान था, उन्होंने अफ़सराना पोशाक छोड़ जब गेरुए वस्त्र धारण कर लिए, तो हमारी नज़रों में जैसे वह परम पद पा गए थे। उनकी रिटारमेंट पर विदाई पार्टी का आयोजन था,

सारा दफ्तर जमा था। हम सब महानिदेशक का विदाई भाषण सुन गद्‌गद् हो रहे थे। भाषण में वह गीता के किसी श्लोक की व्याख्या कर रहे थे। बीच-बीच में बोलते - सभैई भूमि गोपाल की।

अचानक शेर बोला, ''महानिदेशक महोदय, आप से एक बात जानना चाहता हूँ।''

महानिदेशक ने कहा, ''क्या ?''

शेर बोला, ''क्या आप भगवान् बनना चाहते हैं ?''

हम सब सकते में आ गए।

महानिदेशक ने कहा, ''क्या मतलब ?''

शेर बोला, ''जैसे भगवान् रजनीश हैं, जैसे बाल भगवान् हैं।''

विदाई-पार्टी में आए सभी लोग एक-दूसरे को देखने लगे।

नाग की आँखें -मुँह -बदन तो मानों फुफकारने की मुद्रा में थे। उन्होंने जैसे अपनी आँखों की आग से शेर को वहीं भस्म कर देना चाहा।

उस दिन के बाद नाग साहब दो-तीन दिन तक कई बार अपने कमरे के बाहर अंदर होते रहे। बीच-बीच में मेरी मेज़ के पास आकर बुड़बुड़ाते रहे, ''शालीनता की सारी सीमाएँ पार कर जाते हैं लोग। कोई यह न सोचे कि यह बातें यूँ ही भुला दी जाती हैं। अच्छा काम ही काफी नहीं है, अनुशासन का भी महत्त्व समझना चाहिए आदमी को।'' नाग साहब तड़फड़ा रहे थे, पर कुछ कर नहीं पा रहे थे क्योंकि शेर जब भी काम करता था दिन भर का काम दो घंटों में कर डालता था। मुझे लगा शायद नाग मुझे चेता रहे थे कि अगर मैं शेर की नक्ल करने की सोच रहा हूँ तो संभल जाऊँ। वह बोलते जा रहे थे, ''अब कोई चारा नहीं है, यह तो अति है, एक की जगह दो, नहीं तो तीन क़दम रख लूँगा .. मुझे कोई न कोई कदम तो उठाना ही पड़ेगा।''

मेरे मन में ख़्याल आया कि मैं नाग साहब की बातें शेर को बताऊँ। लेकिन बताते-बताते रुक गया। मैं जानता था कि शेर को बताऊँगा तो वह आव देखेगा न ताव, सीधे नाग के कमरे मे घुस जाएगा, उनसे कहेगा, ''सुना है तुम मेरे खिलाफ़ कोई डिसिप्लीनरी एक्शन लेने के बारे में सोच

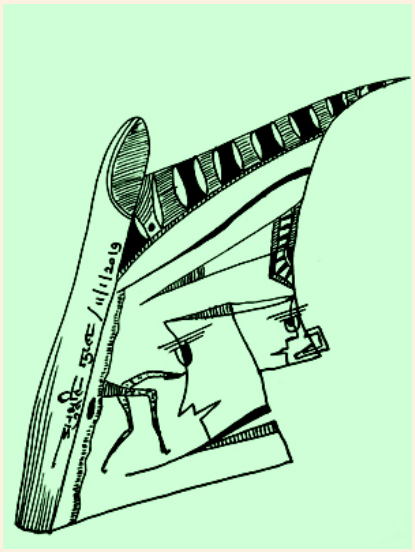

रहे हो।''

मेरे लिए फिर वही मुश्किल। एक तरफ़ मेरा मित्र दूसरी तरफ मेरा अफ़सर। मुझे लगा कि मेरे दोस्त के खिलाफ़ अगर अनुशासनात्मक कारवाई होने का अंदेशा है, उसे सतर्क न करना दोस्ती की तौहीन होगी। मैं उसे कैंटीन में ले गया। अलग-थलग पड़ी एक मेज़ पर बैठ कर, उसे विश्वास में लेकर, सौगंधें खिला कर, मैंने उसे बताया कि नाग उसके खिलाफ़ क्या कारवाई करनेवाला है।

वह हँसा। और फिर वही हुआ जिसका मुझे अंदेशा था। वह उठा। नाग के कमरे की तरफ चल दिया। दरवाज़ा खोला। उसके कमरे में घुस गया। मुझे बहुत क्रोध आया कि उसने अपना वचन नहीं रखा। क्या मैत्री निभाना मुझ से ही अपेक्षित है ? शेर चाहे जो मन में आए करता रहे ? क्या उसका कोई दायित्व नहीं हैं ?

कुछ देर बाद दरवाज़ा खुला। वह बाहर आते-आते दरवाज़े पर ही खड़ा-खड़ा बोला, ''और हाँ नाग, जो मैमोरेडम लिख रहे हो, मुझे दिखा देना, अंग्रेज़ी प्रभावी होना चाहिए।''

अंग्रेज़ी। शेर मैट्रिक था। उसके जीवन में कभी एक ऐसी घटना हुई थी कि उसे लगा था कि अंग्रेज़ी का अल्पज्ञान उसका कमज़ोर पहलू बन सकता है। हुआ यह था कि एक अफ़सर ने एक बार अंग्रेज़ी के किसी शब्द का उसका उच्चारण सुधारा था। उसने पलट कर उस समय तो कह दिया था, 'तुम्हें सिर्फ शब्दों का उच्चारण आता है अंग्रेज़ी नहीं।' लेकिन उस घटना के बाद वह संभल गया था। उसने अंग्रेज़ी लिखने और बोलने में ऐसी दक्षता हासिल कर ली थी कि अधिकतर सहयोगी समझते थे कि उसने अंग्रेज़ी में एम.ए कर रखा है। वे उससे अपने मैमोरेंडमों के जवाब भी लिखवाते थे, और उसके अधिकारी उसकी अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी साहित्य के ज्ञान के आगे खुद को आतंकित और कमतर महसूस करते थे। यह कौशल उसने निस्संदेह स्वाध्याय और कड़े परिश्रम से ही प्राप्त किया था क्योंकि वह टेंटों के स्कूल में पढ़ा था जहाँ अंग्रेज़ी के बहुत अच्छे अध्यापकों के होने की संभावना नगण्य ही थी।

शेर की टिप्पणी पर नाग साहब के कमरे से कोई आवाज़ नहीं आई। निस्संदेह वह टिप्पणी शेर ने मुझे सुनाने के लिए की थी, क्योंकि टिप्पणी करते वक्त उसने दरवाज़ा खुला रखा था।

उसके बाद कई दिन मैंने शेर से बात नहीं की। एक दिन शेर ने मुझे देख कर शरारत में सिर झटका। मेरी मेज़ के पास आकर बोला, ''परसों शाम को घर आना। एक ज़रूरी काम है।''

मैं उसकी हरकत से तमतमाया हुआ था। फिर भी पूछा, ''क्या?''

बोला, ''आना, कुछ मित्र आ रहे हैं।''

मुझे लगा कि वह संबंधों को सामान्य करना चाहता है।

मैं शाम को उसके घर पहुँचा। मैंने पूछा, ''क्यों बुलाया है ?''

बोला, ''आपके अवकाशप्राप्त महानिदेशक आ रहे हैं।''

मैंने पूछा, ''क्यों ?''

बोला, ''भगवान् बनने के लिए।''

मैं हैरान। उसने मुझे यूँ देखा मानों कह रहा हो, ''देखा, महानिदेशक का कमज़ोर पहलू कैसे पहचाना! और नाग को भी साथ ला रहे हैं।''

''क्या ? पर तुम्हारे बुलाने पर आ कैसे रहे है ? तुम से नफ़रत करते हैं फिर भी।''

उन्हें पीना अच्छा लगता है..... यानि एक और कमज़ोर पहलू। हर अफ़सर चाहता है कि बेहतर खिलाड़ी काबू में रहे।''

कुछ देर बाद देखा महानिदेशक आ रहे हैं। साथ में नाग को भी ला रहे हैं। खाना पीना हुआ। बोतल भी खुली। जब काफी पी ली गई तो शेर महानिदेशक की जाँघ पर

हाथ मार-मार कर कह रहा था, ''यह तो मानना पड़ेगा आपका जवाब नहीं।''

बाद में हम सब पालथी मार कर ज़मीन पर बैठ गए। घेरा बना कर हमने एक-दूसरे के हाथ पकड़े। महानिदेशक का एक हाथ मेरे हाथ में था दूसरा नाग के हाथ में। हम सबने आँखें बंद की। शेर बोला, ''यह बैठक विष्णु शर्मा जी को भगवान् विष्णु बनाने के उद्देश्य से बुलाई गई है। आज से हम उन्हें भगवान् विष्णु बुलाएँगे। हमारी संस्था भगवान् विष्णु मिशन कहलाएगी। मैं भगवान् विष्णु के प्रवचन-लेखक के रूप में उन्हें सामग्री उपलब्ध कराऊँगा, श्री आर.एन नाग संस्था के खज़ांची होंगे, साथ ही भगवान् विष्णु के वस्त्रादि धुलवाने, इस्त्री कराने का काम देखेंगे।'' उसने एक आँख से मुझे देखा, आँख मारी, और कहा,''कि इस समिति की कोई भी बात बिना सबकी सहमति के बाहर नहीं जाएगी, और इस वैनचर से प्राप्त होनेवाली आय पर हम सब का बराबर नियंत्रण होगा।''

मुझे तीनों का सहायक बनाया गया और कहा गया कि मैं मंदिरों से संपर्क करके भगवान् विष्णु के प्रवचन-कार्यक्रम बुक किया करूँगा।

आँखें खुलीं तो शेर ने कुछ मंत्रोचार कर विष्णु शर्मा जी पर पानी के कुछ छींटे छिड़कते हुए उन्हें भगवान् विष्णु बनाया। भगवान् विष्णु ने आर.एन नाग की तरफ देखा। फिर बोले, ''नाग, इनका कुछ करो।''

अगले दिन नाग साहब, शेर और मेरी प्रमोशन की सिफारिश में मैमोरेंडम लिख रहे थे। शेर को जन-सम्पर्क अधिकारी और मुझे उसका सहायक बनाने का सुझाव था। ज़िंदगी इतनी तेज़ी से करवट लेगी मेरे गुमान में भी नहीं था। स्टॉफ भी हैरान। क्या ज़माना है। बेशर्मी, बदतमीज़ी पुरस्कृत की जा रही है। मुँहफट, असभ्य, अभद्र, आचरण को महिमामंडित किया जा रहा है।

शेर को जब पता चला कि उसको तरक्की दी जा रही है, तो वह खुश होने के बजाए अटक गया। बोला, ''मैंने प्रमोशन कब माँगी थी।''

उसने सिगरट के पैकेट से सिगरट निकाली, बोला, ''मेरी तनख्वाह बढ़ानी है तो क्लर्क की हैसियत में बढ़ाओ। काम तो क्लर्क ही करते हैं। तो भी,अगर मैं क्लर्क की हैसियत से उतना ही काम करता हूँ, और उतने ही घंटे काम करता हूँ, जितना कि नाग तो मेरा वेतन क्लर्क के रूप में नाग जितना ही होना चाहिए।

नाग साहब सोच रहे थे कि शेर की उन्नति होगी तो उनके सैक्शन से मुसीबत निकल जाएगी और उनकी जान छूटेगी। उसके बाद वह आराम से अपने विभाग में अनुशासन रख सकेंगे।

मैं सोच रहा था कि अगर शेर जन-सम्पर्क अधिकारी का पद स्वीकार नहीं करता तो मेरा सहायक का पद भी गया।

मैंने और नाग साहब ने लगभग साथ-साथ ही कहा, ''क्या बेकार की बात करता है, ऐसा होता है भला ?''

शेर बोला, ''मियाँ, हम आप से अच्छे खिलाड़ी और अपनी टीम के कप्तान इसलिए हैं, कि हम अपने खेल में कोई वीक स्पॉट नहीं छोड़ते। आपके दिए लालच में आ गया तब तो मैं आपका खेल खेलने लग जाऊँगा। क्लर्क या अफ़सर होने से कुछ फर्क नहीं पड़ता, सारा खेल तो आत्मसम्मान के साथ जीने का है। मैं चाहता हूँ सम्मान मिले तो मेरे पूरे तबके को। मैं बराबरी का कायल हूँ, मैं उस अनुशासन का कायल हूँ, जिसमें सब के लिए एक से नियम हों, खेलने के लिए बराबर मौके हों।''

ऊपर जो कहानी मैंने आपको सुनाई है, उसको लगभग पच्चीस साल हो चुके हैं। इस बीच काफी कुछ बदल चुका है, देश में निजीकरण का दौर शुरू हो चुका है, कुछ लोग लाखों में कमाने लगे हैं, कुछ लोग ग़रीब से ग़रीब होते जा रहे हैं। मेरी उम्र अब पचास साल की है, शेर छयालिस-सैंतालिस के लगभग। नाग, जो हम से लगभग सात-आठ साल बड़े थे रिटायर हो चुके हैं। मैं उसी विभाग में डायरेक्टर रहा, और अब एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में काम मिलने के बाद अमेरिका आ गया हूँ। शेर आज भी मेरे पुराने सैक्शन में क्लर्क है। वह आज भी उसी शान, आत्मसम्मान के साथ, निधड़क, दफ़्तर आता है। हाँ, वह अब क्रिकेट की टीम का कोच है। मैं उसे देखता हूँ तो मन में एक सवाल रह-रह कर उठता है कि हम दोनों में से बेहतर खिलाड़ी कौन रहा ...।

***

बारह चर्चित कहानियाँ (विभोम स्वर के बारह अंकों से) संपादन : सुधा ओम ढींगरा, पंकज सुबीर

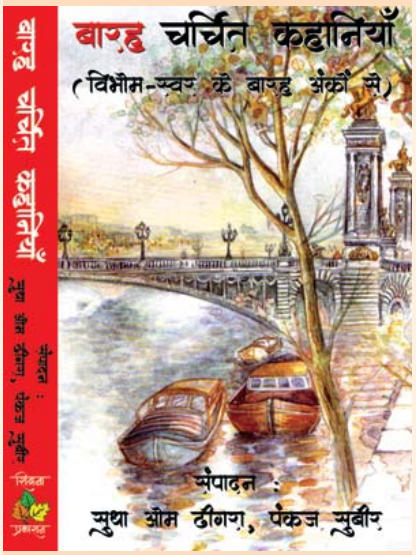

अपने लेखकों को धन्यवाद देने का यह एक छोटा सा प्रयास है। विभोम-स्वर के प्रकाशन को तीन साल हो गए हैं और संपादक मंडल ने सोचा कि तीन साल की चर्चित कहानियों की पुस्तक निकाली जाए। अपने लेखकों के लिए स्नेहिल भेंट। पुस्तक का पिछले दिनों विमोचन शिवना साहित्य समागम में हुआ। इस पुस्तक में विभोम-स्वर के बारह अंकों की बारह चर्चित कहानियाँ हैं। प्रत्येक अंक से एक कहानी। संपादन और चयन सुधा ओम ढींगरा और पंकज सुबीर ने किया है। यह केवल एक संयोग ही है कि चयनित सारे लेखक महिलाएँ हैं। अंक में शामिल कहानियाँ - कैंपस लव- आकांक्षा पारे, ख़ाली हथेली- सुदर्शन प्रियदर्शिनी, क्या आज मैं यहाँ होती- नीरा त्यागी, छोटा सा शीश महल- अरुणा सब्बरवाल, एक कायर दास्ताँ- हर्ष बाला शर्मा, मेरे बाद- पुष्पा सक्सेना, उसका मरना- अनिल प्रभा कुमार, ढोर- अचला नागर, वह सुबह कुछ और थी-डॉ. हंसा दीप, तवे पर रखी रोटी- डॉ. विभा खरे, नाच-गान- उर्मिला शिरीष, ऑरेंज कलर का भूत- पारुल सिंह।

शीशों में बंद ज़िंदगी

मंजुश्री

आज सुबह से ही ख़ूब काले बादल घिरे हुए थे। पाँच बजे तक ख़ूब जमकर बारिश हुई पर इस समय बादल छंट गए हैं और सब कुछ बहुत ख़ूबसूरत लग रहा है। अप्रैल का महीना है समर सीज़न की शुरुआत, पर अक्सर पानी बरस जाता है और हवा भी तीखी ठंडी है। बारिश से नहाई, तरतीब से कटी हुई झाड़ियों के बीच गीली चमकदार सिलेटी सड़क पर फिसलती कारों की लाल-पीली लाइटों के पीछे आसमान में डूबते सूरज के नारंगी और सिलेटी रंग बादलों के बीच ऐसी छटा बिखेर रहे थे मानों बड़ी-सी पेंटिंग आसमान में टंगी हो। शुभांगी लॉफ्ट में खिड़की से, सामने बैठी सड़क पर आती-जाती गाड़ियों को देख रही है। करीने से कटी हुई घास वाले लॉन और फूल-पत्तियों के बीच सिलेटी और मरून रंग के खपरैल वाले बड़े-बड़े मकान ऐसे दिखते हैं मानों किसी मैग़ज़ीन से फोटोज़ काट कर रख दी गई हों। ताज्जुब यह है कि इतने दिनों में उसने किसी भी मकान की खिड़की के पर्दे या ब्लाइंड्स खुले हुए नहीं देखे। पता ही नहीं चलता कि दूर-दूर बने इन ख़ूबसूरत मकानों में कोई रहता भी है या नहीं। उसे यहाँ शिकागो में अपनी लड़की के पास आए लगभग एक महीना होने को आया है। उसे बड़ा अजीब लग रहा है कि यहाँ ऐसे कैसे सब लोग एक दूसरे से बात किए या मिले बिना इतने दिनों तक बंद घरों में रह लेते हैं। उसे तो अपना मुंबई का घर और पड़ोस याद आने लगता है, जहाँ हर कोई हर किसी के बारे में जानता है, कौन किसका रिश्तेदार है और कब आया है कब जाएगा, सबको सबकी ख़बर रहती है, एक बड़े परिवार की तरह। एक दूसरे के सुख-दुख के साथी.. जो कभी-कभी खलता भी है पर यहाँ के नितांत अकेलेपन और चुप्पी के आगे वह कितना अच्छा लगता है। अपने घर की बालकनी में अकेली बैठी भी वह अकेली नहीं होती। सड़क और आस-पास की चहल-पहल उसे अकेलेपन का एहसास नहीं होने देते और फिर कोई न कोई आता ही रहता है। यहाँ तो दूर-दूर तक सन्नाटा पसरा रहता है। सड़क पर फिसलती हुई गाड़ियाँ न दिखाई दें तो पता ही न चले कि शहर में लोग रहते भी हैं ...बस वीकएँड्स पर पार्क और बीचेज़ पर ज़रूर कुछ लोग दिखाई देते हैं या फिर कैंपिंग के लिए निकल जाते हैं। पर रोज़मर्रा की ज़िंदगी में सब इतने व्यस्त रहते हैं कि रात और दिन के बदलते रंगों और ख़ुशनुमा नज़ारों को

संपर्क : ए-10, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-400088
मोबाइल : 9819162949
ई-मेल : kathabimb@gmail.com

देखने का किसी से पास समय ही नहीं है। यहाँ तक कि दुकानें और बड़े-बड़े माल्स भी चारों तरफ़ से बंद।

शुभांगी को तो भीड़-भाड़ वाले बाज़ार में फ़ुटपाथों पर सजी छोटी-छोटी रंग-बिरंगी दुकानों में रखे सामान को देखना, छूना, महसूसना, दुकानदारों से मोल-भाव करना और बाज़ार की गहमागहमी बहुत पसंद है। यहाँ तो एक शहर से दूसरे शहर के मकान-दुकान भी अलग से नहीं लगते। यहाँ पता नहीं कहाँ सब भागे जा रहे हैं। हर कोई अपने आप में खोया हुआ मौन बुतों सा... ह्यूमन टच से रहित। घरों और दुकानों में रात दिन ए. सी. चलते रहते हैं। बहुत सुबह जल्दी ही लोग काम पर निकल जाते हैं। रात में इन दूर-दूर बने मकानों में जलती लाइटों से ही पता चलता है कि इन घरों में लोग रहते भी हैं। बड़े-बड़े पेड़ों और सुंदर लॉनों से घिरे मकान दिन में तो बहुत ख़ूबसूरत दिखते हैं पर यही मनमोहक हरियाली रात में डरावनी लगने लगती है। घर से बाहर झाँको तो निपट सन्नाटा ! इतने सन्नाटे में लोग कैसे रहते हैं! कितने ही मकानों में बस एक या दो लोग रहते हैं। बच्चे भी नहीं दिखाई देते बाहर खेलते हुए। यहाँ तक कि पार्क में भी इक्का-दुक्का लोग दिखते हैं। बच्चों से अधिक तो लोगों के पास कुत्ते दिखाई पड़ते हैं। इस चमक-दमक और करीने से सजे मकानों और दुकानों के बीच आदमी नितांत अकेला है... यंत्र चालित सा ज़िंदगी जीता हुआ!!

शुभांगी को बड़ा अजीब लगता है। शुरू में तो उसका मन ही नहीं लगता था। नेहा और शांतनु के घर से बाहर जाते ही वह उनके वापस आने का इंतज़ार करने लगती और दिन बड़ा लंबा लगने लगता। दोनों ही सुबह आठ बजे काम पर निकल जाते हैं, वैसे तो नेहा को ऑफ़िस पहुँचने में आधा घंटा ही लगता है पर आठ साल की पीहू को स्कूल और चार साल के निखिल को डे-केयर में छोड़ती हुई जाती है। सुबह-सुबह मुँह बिसूरते निखिल को डे-केयर में छोड़ते समय अक्सर सोचती है कि नौकरी छोड़ देगी पर ऑफ़िस पहुँचते ही वह सब भूल जाती है। उसकी काफ़ी बड़ी टीम है और वह अपना काम एंज्वाय करती है। सोचती है कि यह थोड़े समय की बात है फिर जब वह अगले साल स्कूल जाने लगेगा तो फिर वह क्या करेगी घर बैठ कर? वैसे सुबह का समय बड़ा भागमभाग वाला होता है। सोते हुए बच्चों को उठाकर जल्दी-जल्दी तैयार करके ऑफ़िस की तैयारी में नेहा अक्सर तनाव में आ जाती है। बच्चे उठना नहीं चाहते और उसे देर हो रही होती है। शांतनु भी ज़्यादा हाथ नहीं बंटा पाता। अपनी मीटिंग्स और काल्स में ही व्यस्त रहता है। उसे अक्सर काम के सिलसिले में बाहर भी जाना पड़ता है।

शुभांगी ने घड़ी देखी सात बज रहे हैं, शाम को बहुत बार देर हो जाती है दोनों को ऑफ़िस से वापस आने में। पीहू को शांतनु ले आता है और निखिल को नेहा। दरअसल शाम को ट्रैफ़िक बहुत होता है। बाहर अभी भी काफी उजाला है सुबह भी जल्दी हो जाती है। आसपास के मकान भी दूर-दूर हैं। इक्का-दुक्का लोग कभी-कभी अपनी गाड़ी गैराज़ से निकालते हुए दिख जाते हैं। सड़क के उस पार रहने वाले मि. ज़ेम्स ज़रूर यदा-कदा अपने कुत्ते को टहलाते हुए या लॉन मो करते हुए दिखाई दे जाते हैं। शुभांगी को तो यह भी मालूम नहीं कि उसके पड़ोस में दोनों तरफ़ कोई रहता भी है या नहीं। हाँ जब रात में रोशनी दिखती है तो लगता है कि कोई तो रहता है।

आज शनिवार है ऑफ़िस जाने की जल्दी नहीं है तो सब लोग सुबह थोड़ी देर तक सो रहे हैं। शुभांगी नीचे किचन में चाय बना रही थी तभी नेहा भी ऊपर से आ गई। लगता है दोनों बच्चे भी उठ गए हैं और अपने कमरे में धमाचौकड़ी मचा रहे हैं। वे दोनों अपने-अपने चाय के कप लेकर ड्राइंग रूम में बैठी ही थीं कि सामने खिड़की से देखा कि मि.जेम्ज़ अपने बगल वाले घर की खिड़की के काँच से अंदर झाँकने की कोशिश कर रहे हैं। थोड़ी देर तक तो दोनों देखती रहीं फिर देखा कि मि. जेम्ज़ उस घर की घंटी बजा रहे हैं। वे दोनों भी अपने-अपने कप रख कर बाहर निकल आईं। सुबह के साढ़े आठ बज रहे थे। घर से बाहर निकलते ही सर्द हवा का झोंका दोनों को सहला गया।

जैकेट का हुड सिर पर खींचते हुए नेहा बोली----'एनीथिंग रॉन्ग मि. जेम्ज़?'

'हॉय, यू नो देयर इज़ समथिंग वीयर्ड... लास्ट थ्री फोर डेज़ आय हैवन्ट सीन ट्रेसी... डिड यू सी हर..?'

शुभांगी को तब मालूम पड़ा कि उस घर में ट्रेसी नाम की कोई महिला रहती है।

'नो.. ऑय ऑलसो हैवन्ट सीन हर... एक्चुयली लास्ट वैडनसडे शी डिड नॉट ईवन टुक ऑउट हर गार्बेज? ऑय थॉट शी मे नॉट बी एट होम..' नेहा ने भी ट्रेसी की खिड़की से अंदर झाँकते हुए कहा।

खिड़की पर पड़ी हुई ब्लाइंड्स के कारण कुछ दिख नहीं रहा था। तभी घंटी की आवाज़ सुन कर अंदर से एक सफ़ेद झबरा कुत्ता पंजे से खिड़की के काँच को खुरचते हुए भौंकने लगा। मि. जेम्ज़ बाहर से ही उसे शांत करने की कोशिश करने लगे। तब तक पड़ोस के एक और मकान से एक सज्जन बाहर निकल कर मामले की तफ्तीश करने लगे। उनका नाम मनसुख जवेरी था और वे सूरत के रहने वाले थे। काफ़ी समय से यहाँ रह रहे थे उनका अपना एक इंडियन स्टोर था जहाँ उनके साथ उनका छोटा बेटा हाथ बटाता था और बड़ा बेटा किसी कंपनी में नौकरी करता था। दोनों बेटे अपने-अपने परिवारों के साथ उनके साथ ही रहते थे। काफ़ी बड़ा परिवार था।

शुभांगी को अच्छा लगा कि किसी भी बहाने सही, कुछ लोगों से मुलाकात तो हुई। नेहा ने शुभांगी का परिचय मि. जवेरी से करवाया। वे दोनों बहुत देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे। मि. जेम्ज़ और नेहा ट्रेसी का दरवाज़ा खटखटा रहे थे। थोड़ी देर बाद ट्रेसी ने दरवाज़ा खोला। ढीली-ढाली, अस्त-व्यस्त, बे-हाल सी। ऐसा लग रहा था जैसे दो चार दिनों से न खाया हो न नहाया। आँखें लाल सूजी हुई। शराब और सिगरेट की महक आ रही थी।

'हाय मिस्टर जेम्ज़' धीरे से उनसे हाथ मिलाते हुए बोली।

'हलो..ट्रेसी..हाउ आर यू ? वी वर वरीड..व्हेयर हैव यू बीन ?'

'आय एम नॉट फाइन... फ़ीलिंग लिटिल डॉउन यू नो..' उसका कुत्ता उसके पैरों के पास दुम हिलाता चारों तरफ़ देख रहा था।

'व्हाट हैपन्ड ट्रेसी..एनी थिंग रॉग..?'

'नथिंग..आय एम फ़ीलिंग लिटिल लोनली वन डे आय विल गो क्रेज़ी हाय

मि.जवेरी... 'मि. जवेरी की ओर देखते हुए बोली।

'यू नो आय एम सो जैलस ऑफ़ यू मि. जवेरी, यू हैव सच ए बिग फ़ैमिली.. एंड ऑल ऑफ़ यू लिविंग टुगैदर...' ट्रेसी इमोशनल होने लगी।

'फ़ैमिली इज़ मस्ट... यू नो यू हैव टू हैव सम वन टू लव एंड केयर। लोनलीनेस इज़ किलिंग मी, इट्स सो स्केयरी..। आय डोन्ट हैव एनी वन टू टॉक विद ऑर शेयर एनीथिंग। डेज़ आर सो लॉग एंड बोरिंग, आय एम टॉकिंग टू माय सेल्फ...' कुत्ते के बालों पर हाथ फेरती हुए वह बोली।

मि.जवेरी और शुभांगी उसे ढाँढ़स बंधाने लगे। उधर मि. जेम्ज़ धीरे से नेहा को बता रहे थे कि किस तरह पिछले साल ट्रेसी ज़बरदस्त डिप्रेशन में चली गई थी, और उसे पंद्रह दिनों तक अस्पताल में भी रहना पड़ा था।

शुभांगी सोच रही थी कि वाकई यहाँ तो हर दूसरा व्यक्ति डिप्रेशन का शिकार होगा। जीवन की आपाधापी में रिश्तों से दूर होते जाना ही क्या आगे बढ़ना है। इश्क़-मोहब्बत, शादी-ब्याह भी बाँध नहीं पाते।

'यू नो मिसेज़ सिंह फ्यू इयर्स बैक हर सेकेंड हसबैंड पीटर डाइड। ही वाज़ रीयली ए गुड मैन। हर फर्स्ट हसबैंड वाज़ वैरी एब्यूसिव। शी हैज़ वन डॉटर फ्राम हर फर्स्ट मैरिज एंड टू संस फ्रॉम पीटर्स प्रीवियस मैरिज। स्टिल नॉउ शी इज़ ऑल एलोन इट्स बिट कॉम्पलीकेटेड..।'

शुभांगी हैरान थी कि अकेलापन ट्रेसी को किस कदर खाए जा रहा है। इतना बड़ा मकान, कार, परिवार होते हुए भी वह कितनी अकेली है। अकेलापन उसे कहीं पागल न कर दे। ये भी सच है कि भीड़ के बीच भी आदमी निरा अकेला ही होता है पर चारों ओर दिखने वाले लोग उसका ध्यान बटाए रहते हैं। इतना बड़ा खाली घर तो वाकई उसे काटने को दौड़ता होगा।

'आय नो... मि. जेम्ज़, बट ऑय थिंक शी शुड ऑप्ट फॉर द असिस्टेड रिटायर्ड रेज़ीडेंस' नेहा ने धीरे से कहा... 'एटलीस्ट देयर शी विल हैव कंपनी, सम नॉयज, लॉफ्टर एज़ वेल एज़ केयर... ऑर शी शुड ज्वाइन ए फ्यू एक्टीविटीज़।'

ट्रेसी ने शायद सुन लिया था बोली... 'आय नो मिसेज़ सिंह... बट आय कान्ट... आय एम सो अटैच्ड टू दिस हॉउस। दिस इज़ माय होम व्हेयर आय हैव स्पैंट बेस्ट डेज़ ऑफ़ माय लाइफ़। यू नो व्हेन पीटर एंड आय मूव्ड इन हियर, ही प्रामिस्ड टू बी विद मी फॉर एवर..' उसका गला भर आया। आय एम सो लोनली विदआउट हिम..।'

मि. ज़ेम्स उसका कंधा पकड़ कर ढाढ़स बंधाने लगे।

'आय फील हिज़ प्रैज़ेन्स इन हियर। आय वांट टू टॉक टू हिम... इट्स ड्राइविंग मी क्रेज़ी..' और वह रोने लगी।

'ट्रेसी डियर... यू नो वी आर हियर फॉर यू... एनी टाइम यू कैन कम टू अस। प्लीज़ कम ऑउट ऑफ़ दिस सिच्यूएशन। दिस इज़ नॉट गुड, यू विल फॉल सिक। शैल आय कॉल डोरोथी.. ऑर मार्क..?'

'नो..नो..नो... दे आर बिज़ी विद देयर ओन लाइफ्स..'

डोरोथी, मार्क और स्टीवन ट्रेसी की दोनों शादियों से बच्चे हैं। उसके पहले पति ने तलाक के समय डोरोथी को ज़बरदस्ती अपने पास रख लिया था और उसे कभी मिलने नहीं दिया था। हालाँकि अपनी तरफ़ से कई बार ट्रेसी ने डोरोथी से मिलने की कोशिश पर जो दूरी आ गई थी वह कभी कम नहीं हो पाई, और तमाम कोशिशों के बावजूद मार्क और स्टीवन से भी औपचारिक संबंध ही बन पाए।

उसकी शादी के समय वे दोनों काफ़ी बड़े थे, उनके लिए वह उनके डैड की पत्नी मात्र थी, उनकी माँ नहीं। वैसे भी यहाँ लोगों की कई शादियाँ और अलग-अलग पार्टनर्स से बच्चे होना आम बात हैं, शायद उसकी तरफ़ से ही कमी रह गई, जो वह उन गाँठों को खोल नहीं पाई, और रिश्ते उलझते ही चले गए... अब सब अपनी-अपनी ज़िंदगियों में व्यस्त हैं। मन के रिश्ते कभी बने ही नहीं !!

शुभांगी के मन में लगातार यही चल रहा था कि दो शादियों, तीन बच्चों के बाद भी ट्रेसी रिश्तों और प्यार के लिए किस कदर तरस रही है। बस बारिश के छीटों-सा पीटर उसकी ज़िंदगी को भिगो कर चला गया।

नेहा और मि. जेम्ज़ ट्रेसी से बातें कर रहे थे। अब वह काफी संभल गई थी। शुभांगी मि.जवेरी से उनके घर परिवार के बारे में जानकारी ले रही थी। उसे अच्छा लग रहा था कि पहचान बनाने का मौक़ा तो मिला। मि. जवेरी ने उसे अपने घर आने का न्यौता भी दे दिया। थोड़ी देर बाद नेहा और मि.जेम्ज़ ट्रेसी को उसके घर के अंदर वापस ले गए। शुभांगी भी उनके साथ अंदर चली आई। मि. ज़वेरी अपने घर वापस चले गए उन्हें अपने स्टोर पहुँचना था। ट्रेसी के घर की हालत देखकर शुभांगी भौचक्की रह गई। मानों पूरा घर किचन में ही सिमट आया हो। किचन कॉउंटर पर खाली और भरे तमाम कार्टन्स, आधे खुले और आधे बंद खाने के पैकेट्स, गंदी प्लेटें, पैन्स, डाइनिंग टेबल पर गंदे कपड़ों का अंबार, एलबम्स, पेपर बिखरे पड़े थे। सिंक ऊपर तक भरा था। टी. वी. फ़ुल वॉल्यूम पर चल रहा था। वहीं एक बड़ी-सी कुर्सी पर बैठी वह शायद पूरे दिन टी. वी. देखती रहती होगी। पास ही टेबल पर सिगरेट के अधजले टुकड़े और खाली शराब की बोतल

लुढ़की पड़ी थी। लिविंग रूम के सोफ़े पर चादर, कंबल, जैकेट, स्वेटर और सोफ़े के नीचे उसके कुत्ते ब्राइट के खाने की बाउल, कुछ खिलौने और पूप। नीचे ऊपर सभी कमरों की दिन में भी लाइट जल रही थी। ट्रेसी की यह हालत देखकर शुभांगी का सिर चकराने लगा।

'यू नो आय एम अफ्रेड ऑफ डार्कनेस आय डोंट गो अपस्टेयर्स' सफ़ाई देती हुई वह बोली।

मि. जेम्ज़ और नेहा तो थोड़ी देर बात करते रहे और शुभांगी ने बाहर निकल कर थोड़ी देर ताज़ी हवा में साँस ली फिर घर चली आई। इतनी देर में शांतनु और बच्चे नीचे आकर अपना- अपना नाश्ता करने लगे। थोड़ी देर बाद नेहा ने घर में घुसते ही कहा।

'शी इज़ क्रेज़ी'और धम्म से कुर्सी पर बैठ गई।

'क्या हुआ' शांतनु ने पूछा। बच्चे नाश्ता करके लिविंग रूम में खेल रहे थे।

'अरे ! यू नो... वो जो हैं न सामने मिसेज़ ट्रेसी कई दिनों से घर से बाहर दिखाई नहीं दीं। मि. जेम्ज़ काफ़ी परेशान थे, मैं भी बाहर चली गई उन्हें देखने।'

'हाँ ..हाँ .. वो शायद अकेली रहती हैं..

व्हाट हैपेन्ड टू हर... कभी-कभी दिखती तो हैं' फ़ोन पर बात करते-करते शांतनु बोला।

'हाँ यहाँ तो ज़्यादातर लोग अकेले रहते हैं। लास्ट टाइम आय सॉ हर.. शी वॉज़ ओके।'

माइक्रोवेव में चाय गरम करती हुई नेहा बोली-'इट्स हॉरिबल... हे भगवान् वह कैसे रह रही है....फिल्दी..मैं तो पगला जाऊँ। वह घर से बाहर निकल कर कोई जॉब या कोई एक्टिविटी क्यों नहीं ढूँढ़ती।' नेहा सिर पर हाथ रखते हुए बोली।

शुभांगी ने भी हाँ में हाँ मिलाई।

'काम डॉउन... हम लोगों को भी तो कभी-कभी अपने अड़ोस-पड़ोस के लोगों से मिलते रहना चाहिए।' शांतनु बोला।

'या..या.. आय नो... लेकिन समय कहाँ है अपने पास? सुबह से शाम तक तो भागम भाग रहती है। ऑफिस, घर, बच्चे, क्लासेस..दम लेने को फुर्सत नहीं है। छुट्टी वाले दिन तो बाकी के कितने काम होते हैं!!! व्हाई डोंट यू ट्राई?' नेहा चिढ़ कर बोली।

शुभांगी मन ही मन सोच रही थी कि सच में किसी के पास किसी के लिए समय नहीं है पता नहीं सब किस अंधी दौड़ में लगे हैं? कब दिन निकलता है और कब रात आती है पता ही नहीं चलता। दो पल शांति से बात करने की और ज़िंदगी जीने की भी फ़ुर्सत नहीं मिलती। ईंट पत्थर के बड़े-बड़े मकान ही बन पाते हैं, हँसी ठहाकों से गूँजते मज़बूत रिश्तों की डोर से बंधे घर नहीं बन पाते।

'आय हैव एन आयडिया मॉम.. तुम क्यों नहीं मिसेज़ ट्रेसी से दोस्ती कर लेतीं? तुम भी तो घर में अकेले बोर होती हो। तुम दोनों की समय भी कट जाएगा ..यस दैट विल बी ग्रेट...' टेबल पर कप रखती हुई नेहा बोली।

'मैं भला मैं क्या बात करूँगी उससे ना ना..मैं तो उसे जानती भी नहीं.. और हम दोनों बिल्कुल अलग हैं।'

'अरे ! कुछ गप्पें मारना... हाल-चाल पूछना एक दूसरे के, चाय-वाय पीना संग में, धीरे-धीरे जान जाओगी एक दूसरे के बारे में... कम ऑन मॉम...' नेहा बोली।

'नहीं.. नहीं... मैं नहीं..' उठते हुए शुभांगी बोली।

'यू नो मॉम यहाँ ज़्यादातर घरों में एक या दो लोग ही रहते हैं। बच्चे तो कॉलेज जाते हैं तो घर छूट जाता है। फ़ैमिलीज़ भी छोटी होती हैं। थैंक्सगिविंग और क्रिसमस पर ज़रूर एक दूसरे के घर आते-जाते हैं या कभी-कभार वैसे ही आते हैं। अपने जैसे नहीं कि ज़रा मौक़ा मिला नहीं कि हंगामा शुरू।'

'तो क्या करते हैं अकेले... कैसे समय गुज़रता है ? शुभांगी ने अचरज से पूछा।

'कुछ पता नहीं कुछ तो करते ही होंगे?'

'इसीलिए तो लोग रिटायर्ड रेज़ीडेंस पसंद करते हैं।'

'पसंद तो कोई नहीं करता होगा.. मजबूरी है, कोई क्या करे वहाँ चारों तरफ़ लोग हैं देखभाल भी होती होगी, पर मन तो अपनों के लिए भटकता ही होगा...' शुभांगी बोली और उसे ट्रेसी पर दया हो आई।

'मॉम कैन आय कॉल मॉय फ्रेंड मैगी टू प्ले विद मी टुडे प्लीज़...प्लीज़ मॉम..' अचानक पीहू बोली।

'नो बेटा नॉट टुडे। आज बहुत काम है और तुम्हारी क्लासेस भी तो हैं।'

पीहू का मुँह लटक गया। दरअसल अड़ोस-पड़ोस में बच्चे भी नहीं दिखते। यहाँ तो प्ले डेट्स होती हैं बड़ी औपचारिक-सी। दिन-दिन भर सड़क पर खेलने और एक दूसरे के घरों पर धावा बोलने की छूट यहाँ नहीं है।

'मनडे विल बी ओके। मैं घर से काम करूँगी। तुम्हें स्कूल से जल्दी वापस ले आऊँगी दैन यू कैन कॉल हर।'

'ओके मॉम। कैन आय कॉल प्रिया टू...प्लीज़।' नेहा के गले में लटकती हुई पीहू ने पूछा।

'ओके... ओके ज्यू कैन।'

'थैंक्यू ..मॉम..' और पीहू नेहा के गाल पर किस करके निखिल के साथ खेलने चली गई।

शुभांगी पैटियो के बड़े से शीशे के दरवाज़े को खोलकर बैकयार्ड में लगे हुए किचन गार्डन में निकल आई और पौधों पर हल्के से हाथ फेरते हुए उनकी ख़ुशबू लेते हुए सोचने लगी कि इन बंद शीशों के परे भी ज़िंदगी में बहुत कुछ है....

***

लघु कथा

गिरगिट

सुमन कुमार

"उठिए जी, उठिए...। दोपहर हो चली है। बाल श्रम उन्मूलन-दिवस में नहीं जाना क्या? फेसबुक पर भी तो कुछ संदेश डालना होगा।" श्रम मंत्री की पत्नी ने कहा।

"अरी भाग्यवान! थोड़ी देर और सो लेने दो।"

"अरे सोते रहोगे तो तुम्हारी नेतागिरी चली जाएगी तेल लेने।"

"ओहो यह नेतईगिरी भी न...। कभी-कभी जी का जंजाल लगती है। खैर जाओ बंटी से बोलो गाड़ी साफ करे।"

न चाहकर भी मंत्री जी गाड़ी में बैठकर प्रोग्राम के लिए निकल पड़ते हैं। रास्ते में झुग्गी- झोपड़ी के बच्चों को खेलते देख गाड़ी रुकवाते हैं और...।

"हाँ सर...। ऐसे ही। बढ़िया पोज है। एक बार और सर...हाँ...हाँ...। हो गया।"

मंत्री जी ने उन तस्वीरों को फ़ेसबुक पर अपलोड कर दिया। कैप्शन के साथ- "सभी को शुभकामनाएँ! हमें बाल श्रम के खात्मे के लिए यह संकल्प लेना चाहिए कि न ही हम खुद बाल श्रम कराएँगे और ना ही कराने देंगे।"

इधर सेक्रेट्री फ़ेसबुक पर देखकर मन-ही-मन बुदबुदाते हुए- 'खुद घर में बच्चा नौकर रखकर...' लाइक़ का ऑप्शन दबा देता है।

***

संपर्क:सी/ओ - नरेश राय, एस/ओ- बालकिशुन राय, देवी स्थान, मोहनपुर, पुनाईचक, न्यू कैपिटल, पोस्ट- एल0 बी0 एस0 नगर, पटना- 800023 (बिहार)
मोबाइल:7488272208
ई-मेल : suman.writer54@gmail.com

आप क्यू में हैं.....

चौधरी मदन मोहन समर

सुधाकर की नौकरी दिल्ली में लगी तो घर में खुशी का माहौल होना लाज़मी था। तेरह हज़ार पाँच सौ रुपये महीने की तनख्वाह उसके लिए बहुत मायने रखती थी। हालाँकि आज की महंगाई में दिल्ली जैसी जगह में ये रुपये ऊँट के मुँह में जीरे की तरह ही थे। रहने के लिए किसी ठीक-ठाक जगह पर पाँच हज़ार रुपये से कम में छत क्या मिलेगी। फिर आना-जाना। राशन-पानी। पढ़ाई-लिखाई। दवा-दारू, जिसमें दारू का मतलब वो कतई नहीं जो हाइवे पर चाय से ज़्यादा आसानी से मिल जाया करती है। खैर खुशी मिली है तो क्यों मन छोटा किया जाए, बेहतर है छोटी-छोटी बातों में ही बड़ी-बड़ी खुशियाँ तलाश ली जाएँ। इसीलिए सुधाकर की पत्नी स्मिता ने नौकरी की सूचना मिलते ही सत्यनारायण भगवान् की कथा करवाई, सारे रिश्तेदारों को प्रसाद बाँट कर बदले में बधाई और शुभ-कामनाएँ बटोरीं व एक सन्दूकची में कपड़े-लत्ते और कुछ ज़रूरी सामान रख कर सुधाकर को दिल्ली रवाना कर दिया। तय हुआ कि वहाँ जाकर जैसे ही रहने का इंतज़ाम हो जाएगा स्मिता भी वहाँ चली जाएगी।

सागर, बंडा, रेहली, खुरई, बीना में नौकरीयाँ जैसे धरती में समा गई थीं। भारत-ओमान तेल रिफायनरी के बीना में आने के बाद भी सुधाकर जैसे कई बदनसीब थे जो रोज़गार को दूर की कौड़ी मानते थे। बीड़ी उद्योग भले ही शोषण करता था, कलेजा फूँकता था, लेकिन लोगों के पेट तो पाल देता था। आजकल यह उद्योग मंदा होकर ठहराव की तरफ चल पड़ा है। सो वैसे ही गरीबी में जी रहे बुंदेलखण्ड के लोगों का आटा गीला सा ही हो गया था। सुधाकर ने यारों-दोस्तों और परिचितों के माध्यम से दिल्ली में पैर जमाने का विचार किया। उसका मानना था कि दिल्ली, गुड़गाँव, फरीदाबाद, बल्लभगढ़, नोएडा में कहीं तो उसे कुछ ऐसा काम मिलेगा जिसके दम पर वह भी कभी-कभार आकर अपने मोहल्ले में कॉलर तान कर राजधानी में रहने की धौंस जमा सकेगा। उसकी लगातार कोशिश के फलस्वरूप दिल्ली के ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया में यह तेरह हज़ार पाँच सौ रुपये की नौकरी की सुखद सूचना उसे मिली थी।

अभी तक सुधाकर सागर के मोतीनगर मोहल्ले में अतिक्रमण कर पान की गुमठी चलाता था। बीकॉम यानि बही-खाते की पढ़ाई करने के बाद दो साल तक सारे कैरियर काउंसलिंग, स्टार्टअप, और सोर्स- सिफारिश के बाद भी इस क्षेत्र में नौकरी का कोई ओटला नहीं जमा तो उसने मन्दिर के बाजू की खाली जगह देखी और पैंतिस हज़ार रुपये की जुगाड़-तुगाड़ वाली अपनी कुल पूँजी से पान की एक गुमठी चुनाव के दौरान एक रात लाकर यहाँ रख दी थी। चुनाव के समय शहर की खाली जगहों पर इसी तरह रोज़ी-रोटी के

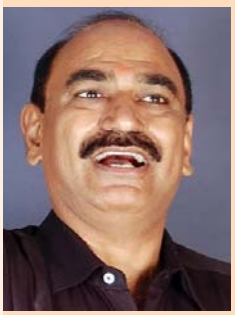

संपर्क:16, श्रीहोम्स चूनाभट्टी कोलार रोड, भोपाल (मध्य प्रदेश)
मोबाइल: 9179052222, 9425382012

लिए कब्जे कर लिया जाना आम बात हैं। वोटरों को पता होता है कि अगर ज़रा भी किसी ने चूँ-चपड़ की तो कथित भैया-कक्का का एक फ़ोन सबको ठंडा कर देगा। यह आचरण संहिता का मामला तो बस कुछ दिन की बात होती है बाद में तो सबका पाला इन्हीं भैया-कक्का जी से पड़ना है। और किसे पता है गरीब किसका वोटर है। रोटी की जुगाड़ वाले का तो सबको साधो अपने माधो के चलते गंगा नहाने में ही फायदा है।

पान से रंगे हाथ सुधाकर के दिन लाल की जगह स्याह ही कर रहे थे। दिन भर हथेली रगड़ने के बाद डेड़-पौने दो सौ रुपये पल्ले पड़ते थे। बड़ा भाई शादी के बाद अलग होकर रह रहा था। छोटा भाई पढ़ रहा था, बहन शादी के बाद लड़-झगड़ कर घर वापस आ गई थी और अब स्मिता पर अपना अवसाद उतारा करती थी। सुधाकर का एक साल का बेटा सुमित जिसे प्यार से सभी सुम्मी कहते चलना सीख रहा था। पिता को दमा और माँ को रतौंधी ने घेर रखा था। गोपालगंज की छोटी सी गली में दादा-परदादा का बनाया हुआ एक मकान था, जिसके एक हिस्से में ये सात प्राणी रहते थे और एक हिस्सा बारह सौ रुपये महीने पर नगरनिगम में चपरासी की चाकरी करने वाले पृथ्वीलाल जी को किराए से दे रखा था। घर किराए से देना भी एक सिरदर्द ही होता है। एक तो तीन साल से किराया भी वहीं फिक्स था, फिर पृथ्वीलाल की पत्नी ऊषा और सुधाकर की बहन कंचन में बिल्कुल भी पटरी नहीं बैठती थी। हालत यह थी कि पृथ्वीलाल से किराया बढ़ाने य मकान खाली करने की बात होती तो वो अपनी नगर निगम की नौकरी के रुतबे का इशारा कर देते और बेचारे दमे के मरीज़ सुधाकर के पिता खाँसते-खाँसते खामोश हो जाते। कुल मिला कर ये सारी कमाई चूल्हे के धुएँ में ही उड़ जाती थी। अगर कहीं एक बार डॉक्टर साहब के पास जाना पड़ जाए तो सारा गणित उल्टा-पल्टा हो जाना तय मानों। घर की परिस्थितियों को देखते हुए कोई महीना ऐसा नहीं निकलता था जब यह गणित न गड़बड़ाता हो। इस बीच एक-आध बार नगरनिगम के अतिक्रमण दस्ते का दरोगा भी आ धमकता। अब बार-बार भैया से फ़ोन कब तक लगवाओ, सो उसे भी अपने हिसाब से देखना ही पड़ता।

दिल्ली जाने से पहले सुधाकर ने पान की गुमठी को ढाई हज़ार रुपये महीने में किराए पर दे दिया। साथ ही पाँच एक हज़ार रुपये के गुटके, तम्बाकू, सुपारी, कत्था, चूना, चटनी-किमाम, वगैरह के नगद ले लिए। शोकेस जैसी हालत में दिया है वैसी हालत में वापस करने की बात भी लिखवा ली थी। किराए नामें की एक शर्त यह भी थी कि अतिक्रमण दस्ते को जो भी खर्चा-पानी लगेगा वह किराएदार ही देगा बाद में किराया देते समय इसमें झंझट नहीं होना चाहिए। इससे सुधाकर को यह राहत तो मिल ही गई थी कि ढाई हज़ार अतिक्रमण की गुमठी से और बारह सौ रुपये घर के किराए के मिला कर सैंतीस सौ रुपये महीना घर मे छौंक-बघार लगवाता रहेगा। अपना पेट पालने के बाद हज़ार पाँच सौ रुपये वह दिल्ली से भी भेज ही देगा, फिर बड़े भाई का भी तो कुछ फर्ज़ बनता ही है। वह भी तो कुछ देखेगा ही। इन सपनों में उसने देश के तो पता नहीं अपने अच्छे दिनों के सपने बुनने शुरू कर दिए।

शुभ मुहूर्त में माँ और पिता के पैर छूए, भैया-भाभी का आशीर्वाद लिया। कंचन को दुलारा और फिर मौका तलाश कर चंद लम्हों के लिए ही सही स्मिता को इशारा कर कमरे में चला गया। भीतर परम्परागत और सदियों पुराने तरीके से पत्नी से प्यार जताया, सुम्मी को पुचकारा व उत्कल एक्सप्रेस से दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

सुधाकर की खासियत यह थी कि वह ढक्कन की तरह नहीं था। बात करने का सलीका, और कुछ ज़रूरी चपलता उसमें विद्यमान थी। इसलिए उसे भरोसा था कि एक बार कहीं पैर जमा भर ले, फिर तो वह ज़िन्दगी की गाड़ी को खींच-तान करके पटरी पर ले ही आएगा। तेरह हज़ार पाँच सौ रुपये की तनख्वाह से शुरूआत कोई इतनी खराब भी नहीं थी कि उसे ठुकरा दिया जाता। उसे विश्वास था कि दो-चार साल में वह अपनी काबिलियत का लोहा मनवा कर इस रकम को बढ़वा ही लेगा। किन्तु अभी उसकी चिन्ता स्मिता और एक साल का बेटा सुम्मी थे, जिन्हें वह अनिश्चित काल के लिए अकेला छोड़ कर जा रहा था। उसने स्मिता को वचन दिया था कि जितनी जल्दी होगा वह उसे अपने पास दिल्ली बुला लेगा।

सिक्का कार्गो में नए और जूनियर सुपरवायज़र के पद पर सुधाकर ने काम शुरू कर दिया। बीके खेमवाल सीनियर सुपरवायज़र और सिक्का साहब के बेहद विश्वास पात्र थे। भिवानी के रहने वाले थे काम मे बड़े ही सख्त और टाईम के पाबंद। किसी का भी पाँच मिनिट देरी से आना उसकी सारी दिहाड़ी खराब कर सकता था। अपने नए जूनियर को उन्होंने हरियाणवी लहजे में स्पष्ट समझा दिया था कि- ''भाई देख लै, एक तो टैम का पक्का रहणा पडेगा और किसी मक्कारी, बहाने, बेईमानी की तो सोचियो ही न। भगवान् ने नौकरी दी है तो इसे उसी का पवित्तर परसाद समझ ग्रहण करियो। बाकि कोई दु:ख-सुख हौबे तो मुझे बता देणा। मैं जो मदद कर सकूँगा करूँगा''। उसके बाद खेमवाल जी ने सुधाकर को सिक्का साहब से मिलवा कर बता दिया था कि यह नया जूनियर सुपरवायज़र आया है। सिक्का साहब ने भी कुछ इस तरह से उसकी तरफ देख कर 'हूँ' कहा था जैसे जता रहे हों कि तुम्हारा बॉस खेमवाल है, उसकी हुक्म उदूली तुम्हे मंहगी पड़ सकती है। सुधाकर नें गाँठ बाँध ली थी कि वह खेमवाल जी को अपने बस में कर उनकी कसौटी पर खरा उतरेगा।

उसने जल्दी ही सरिता विहार में एक कमरे रसोई का मकान साढ़े चार हज़ार रुपये महीने के किराए पर ले लिया। दूसरी जगहों पर मकान तो कुछ सस्ते भी मिल रहे थे लेकिन परिवार के साथ रहने के लिए लोकेशन और आस-पास का माहौल भी तो कुछ मायने रखता है। पत्नी और बच्चे के साथ रहने के लिए यह घर सुधाकर को ठीक लगा था। हालाँकि उसकी जेब के दायरे से यह कुछ बाहर ही जा रहा था। किन्तु उसे भरोसा था कि समझदार स्मिता बाकी खर्चों को खींच-तान कर सिकोड़ लेगी व अपना घर शेष बचे नौ हज़ार रुपये में चला लेगी। सब ठीक होने पर एक दिन शनिवार को अपना काम निपटा कर इतवार की छुट्टी के दिन वह सागर जाकर स्मिता और सुम्मी को भी अपने साथ दिल्ली ले आया।

दिन पंछी की तरह उड़ते जा रहे थे।

सुधाकर और स्मिता का जीवन सौ करोड़ आम भारतीयों की तरह चल रहा था। ज़िन्दगी का आनंद हर वर्ग के लिए उनके पास उपलब्ध जेब के अनुसार होता है। भारत की सवा सौ करोड़ की आबादी में से सौ करोड़ की जेब ऐसी ही होती है जैसी सुधाकर की है। शेष चौथाई अरब में अलग-अलग लोगों की जेबों का साईज़ अलग-अलग होता है। यह चौथाई अरब भारतीय ही किसी बहुमंज़िले अस्पताल की चमक बरकरार रखते हैं। ये ही टिपिकल अंग्रेज़ी नाम वाले स्कूलों की कक्षाओं के फर्नीचर का बोझ उठाने की क्षमता रखते हैं और ये ही किसी सिनेमा की कमाई को सौ करोड़ रुपये के आँकड़े के पार लेकर जाते हैं। यही आबादी किसी मॉल के मल्टी की सीट पर बैठ ढाई सौ रुपये के छंटाक भर पॉपकार्न का आनंद लेती हैं। बाकी सुधाकर जैसों के लिए तो ढाई सौ रुपये का मतलब जैसे-तैसे ढाई दिन की थाली कटोरी को भरना ही होता है। सुधाकर की थाली-कटोरी भी इसी तरह दाल रोटी को छूती हुई चल रही थी। सुम्मी भी बड़ा हो रहा था। उसे पास के ही एक साधारण किन्तु अंग्रेज़ी माध्यम के प्राईवेट स्कूल में एडमिशन दिला दिया था। अब सुधाकर इतना भी गया-गुज़रा और पिछड़ा हुआ नहीं था कि अपने बच्चे को किसी हिन्दी मीडियम के सरकारी य प्राईवेट स्कूल में बिठा आता। आख़िर सागर में वार-त्यौहार को जाकर वह रिश्तेदारों को क्या कहता कि उसका बच्चा हिन्दी मीडियम में पढ़ता है ? बाहर निकला है तो आख़िर कुछ तो स्टेट्स बनाना ही पड़ेगा न उसे। इस विषय पर वह भारतीय मानसिकता का प्रतिनिधि था।

पति-पत्नी और एक बच्चे का परिवार चलाते हुए सुधाकर दिल्ली में रम गया था। पाँच साल गुज़रते-गुज़रते सागर में माँ और पिता दोनों चले गए थे। इस दौरान गुल्लक और खाते में जितने रुपये-पैसे जमा हुए बारी-बारी से दोनों की रसोई-तेरहवीं में लग गए थे। छोटा भाई भी मेट्रिक में फेल होकर पान की गुमठी किराएदार से खाली करवा उसके माध्यम से रोटी खाने लगा था। सुधाकर ने उस पर यह अहसान किया था कि उसका किराया-भाड़ा नहीं लिया था। माँ-बाप के जाने के बाद कंचन की तीख-तेज़ी चली गई थी सो उसे उसकी उम्र से दुगनी उम्र के सजातिय विदुर के घर बिठा दिया था, जहाँ वह अपनी किस्मत से समझौता कर दिन काट रही थी और एक नन्ही-मुन्नी बिटिया की माँ होने के सुख में मगन थी। बड़े भाई ने पृथ्वीलाल से मकान खाली करा लिया था और वह खुद उसमें रहने चला आया था। सुधाकर ने अपनी मेहनत और ईमानदारी से खेमवाल और सिक्का साहब का दिल जीत लिया था व उसकी तनख्वाह में बढ़ौतरी होते हुए अब वह सोलह हज़ार हो गई थी। । साथ ही कम्पनी ने एक मोटर सायकल व महीने का तीस लीटर पैट्रोल का कोटा मंज़ूर कर दिया था। उसने पुराना घर बदल कर वन पाईंट फाईव बीएचके का फ्लैट किराए पर ले लिया था। स्मिता ने ब्यूटी-पार्लर का कोर्स कर अपने घर में ही कुर्सी आईना लगा कर एक पार्लर खोल लिया था। एक दो महिलाएँ ग्राहक उसके पार्लर में रोज़ आ ही जाती थीं; जिससे मन भी लगा रहता था और अतिरिक्त खर्चे की पूर्ती भी हो जाती थी। करवा-चौथ, दिवाली य शादी ब्याह के मौके पर यह संख्या बढ़ जाती और स्मिता की गुल्लक कुछ ज़्यादा वज़नदार हो जाती। घर में किश्तों से धीरे-धीरे रंगीन टीवी, फ्रिज़,वाशिंग मशीन भी आ चुके थे और दोनों के पास सेमसंग के एन्ड्राय स्मार्ट मोबाईल फ़ोन भी थे जिन पर फेसबुक, व्हाट्सएप, यू-ट्यूब के खाते थे और उनके इन-बॉक्स फुल रहने लगे थे। ये मोबाईल चलाने में सुधाकर और स्मिता से ज़्यादा चपल छह साल का सुम्मी हो गया था।

एक दिन स्मिता को अपने भीतर कुछ परिवर्तन महसूस हुआ। उसने अपना चैक-अप कराया तो पता चला उसके पाँव भारी हैं। सुम्मी छह साल का हो ही गया था। सुधाकर और स्मिता ने इसे शुभ संकेत माना और नए मेहमान के आने के स्वागत की तैयारियाँ करने लगे। जैसे-जैसे समय नज़दीक आता जा रहा था स्मिता को रोजमर्रा के काम में समस्या आने लगी थी। ऐसे समय दोनों को कंचन का ख़्याल आया व सुधाकर ने अपनी समस्या का वास्ता देते हुए कंचन को दिल्ली बुला लिया। कंचन भी खुशी-खुशी भाभी की मदद को दिल्ली आ गई।

समय आया व स्मिता की गोद में दूसरी किलकारी गूँजी। एक प्यारी सी सलोनी सी बिटिया का आगमन हुआ। दोनों बहुत खुश थे। सुम्मी की नन्ही बहन आ गई थी। कंचन ने बड़े प्यार से अपनी भतीजी का नाम स्वाति रख दिया। बच्ची को सवा महीने का कर कंचन उसकी बिटिया के साथ वापस सागर चली गई थी। स्मिता बच्ची की देखभाल करने लगी व दिन फिर अपनी गति से चलने लगे।

अभी स्वाती चार माह की ही हुई थी कि उसका स्वास्थ कुछ असामान्य सा रहने लगा था। पहले तो स्मिता ने पड़ोस के क्लीनिक पर लोकल डॉक्टर को दिखाया; जिसने कुछ दवा गोली दे दी लेकिन स्वाती पर उनका कोई असर नहीं हुआ। अब बच्ची को साँस लेने में परेशानी के साथ उसके हाथ-पैरों में सूजन आने लगी थी। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती व बेहोश हो जाती। लोकल डॉक्टर की दवा से कोई फर्क नहीं पड़ा तो बच्ची को शिशु रोग विशेषज्ञ के पास ले गए। डॉक्टर ने बच्ची को देखा और जैसे ही स्टेथोस्कोप हृदय पर लगाया डॉक्टर की आँखें सिकुड़ने लगीं व वह चिंतित दिखाई देने लगा। उसके हाव-भाव देख कर सुधाकर व स्मिता का कलेजा भी घबराने लगा था। डॉक्टर ने स्टेथोस्कोप को कान से हटाया व अपनी कुर्सी पर बैठते हुए दोनों की तरफ देखा। फिर बच्ची के ब्लड का सेंपल देने व ईको कार्डियोग्राफी टेस्ट कराने का बताया।

यह रिपोर्ट शाम को देर तक आने की उम्मीद थी। इसलिए डॉक्टर ने उन्हें अगले दिन बुलाया था। सुधाकर ने फ़ोन करके अगले दिन की छुट्टी ले ली थी।

दूसरे दिन दोनों जब डॉक्टर के पास गए, वे उन्हीं का इंतज़ार कर रहा था। रिपोर्ट उसके सामने थी।

''क्या हुआ डॉक्टर साहब''- लगभग एक साथ दोनों ने पूछा।

''देखो, मैं आपको किसी अँधेरे में रखना नहीं चाहूँगा। मामला सीरियस है। बच्ची को वीएसडी प्राब्लम है''। - डॉक्टर ने कहा।

''यह क्या होता है सर''- सुधाकर ने घबराते हुए कहा।

''इसका मतलब यह है कि बच्ची के

दिल के वाल्व की दीवार में छेद है, और यह छेद सामान्य तौर पर अपने-आप ठीक होने जितना नहीं लग रहा।''- डॉक्टर ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा।

डॉक्टर की बात सुनते ही स्मिता की आँखों में आँसू आ गए और सुधाकर के चेहरे पर चिंता की लकीरे उभर आई।

''सर अब हम क्या करें''- रुआँसे स्वर में सुधाकर ने कहा और स्मिता अपनी गोदी में स्वाती को दुलारने लगी।

''अब आपको इसे किसी हार्ट स्पेशिलसट के पास ले जाकर जाँच कराना होगा कि यह छेद किस तरह का है। हो सकता है इसके लिए हार्ट की सीटी स्केन भी कराना पड़े। फिर आगे का इलाज स्पेशिलस्ट ही आपको बता सकेंगे।''- डॉक्टर ने बताया।

''आप अपोलो, मेदाँता य एस्कार्ट अस्पताल में जा सकते हैं लेकिन ये बहुत मंहगे हैं, अगर आप इनका खर्च उठा सकते हो ते देख लो''- डॉक्टर ने एक गहरी साँस लेते हुए कहा।

''सर हम तो जैसे-तैसे रोटी कमा खा रहे हैं, कैसे इस नन्हीं जान को बचा पाएँगे। हमारी तो दुनियाँ ही उजड़ जाएगी''- सुधाकर ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा।

डॉक्टर ने दिलासा देते हुए कहा- ''निराश मत होईए आप। ईश्वर पर विश्वास रखो। अगर उसने बच्ची के जीवन में साँसें लिखी हैं तो वह उसके इलाज की व्यवस्था भी करेगा''। वैसे एम्स भी इस मामले में अच्छा है लेकिन उसके लिए तो सम्पर्क की ज़रूरत होगी। डॉक्टर ने सुधाकर के कंधे पर स्नेह से अपना हाथ रखा तो सुधाकर की आँखें छलछला गईं।

डॉक्टर ने कुछ ज़रूरी दवाईयाँ दीं और उन्हें देने का समय व तरीका बता दिया। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह केवल तात्कालिक आराम के लिए हैं। जिससे बच्ची की तकलीफ कुछ कम हो जाएगी। यह स्थाई इलाज नहीं है।

अगले दिन जब सुधाकर काम पर गया तो उसका मन नहीं लग रहा था। उसका पूरा ध्यान अपनी नवजात बच्ची की तरफ था, जिसने साँस लेने के साथ ही दर्द सहना शुरू कर दिया था। माता-पिता के लिए संतान सबसे बड़ी प्राथमिकता होती है। संतान के आगमन की सूचना मात्र से ही दोनों प्रफुल्लित हो जाते हैं। स्वस्थ संतान का जन्म ईश्वर का श्रेष्ठ वरदान होता है। स्मिता व सुधाकर का जीवन बिना किसी व्यवधान के सुचारू चल रहा था। लेकिन अचानक भगवान् ने एक खुशी देकर साथ में कड़ी परिक्षा रख दी थी। सुधाकर को दिल्ली में रहते पाँच साल हो गए थे। वह दिल्ली की धड़कन को समझ चुका था। एक सामान्य व्यक्ति के लिए दो जून की रोटी की व्यवस्था करना ही कठिन होता है। बीमारी द्वारा घर देखना उसके जीवन के लिए अभिशाप है। अपनी ज़रूरतों की कटौती कर उसने कुछ रुपये एकत्र किए थे। लेकिन वह इतने भी नहीं थे जिनके दम पर वह अपनी बच्ची का इलाज किसी मंहगे अस्पताल में करवाने में सक्षम होता।

सुधाकर का व्यवहार अपने काम पर उत्साह से भरा होता था। पिछले पाँच साल से सिक्का साहब व खेमवाल जी ने कभी उसके चेहरे पर तनाव य परेशानी नहीं देखी थी। आज पहली बार खेमवाल ने अपने जूनियर को उदास देखा था।

''ओए सुधाकर के बात सै, आज थारा मन काम में ना लाग रिया- कल तो तैने छुट्टी ली थी न, तेरी बच्ची बीमार है। इब कैसी है बच्ची''? अपने चिर-परिचित लहजे में खेमवाल ने कहा।

''नहीं सर कोई बात नहीं है''- उदासी भरी आवाज़ को लाख बदलने का प्रयास कर असफल होते सुधाकर ने कहा।

''न बेटा कोई बात तो है जो आज तू परेसान दीखे है''- खेमवाल ने भाँपते हुए कहा।

जवाब देने के स्थान पर सुधाकर की आँखों से आँसू निकल गए।

यह देख कर खेमवाल ने सुधाकर के कंधे पर स्नेह से हाथ रखा व उसे अपने केबिन में ले आए। पानी पिलाया और दो चाय मंगा लीं।

''सुधाकर तू हमारी कम्पनी का होनहार और मेहनती वर्कर है। हम सारे एक परिवार के लोग हैं। जो भी तकलीफ है बता दे। हो सकता है हम लोग तेरी मदद कर सकें''। - खेमवाल ने पूरी सहानुभूति का इज़हार करते हुए कहा।

सुधाकर ने इतना अपनापन पा कर पूरी बात खेमवाल को बता दी।

सुन कर खेमवाल भी गम्भीर हो गए। सब कुछ ठीक हो जाएगा कह कर समाधान का आश्वासन दिया।

अगले दिन सिक्का साहब के चेम्बर में खेमवाल और सुधाकर बैठे थे। खेमवाल ने सिक्का साहब को सुधाकर की समस्या से आवगत करा दिया था। सुन कर सिक्का साहब भी चिंतित हो गए थे। उन्होंने फ़ोन पर दो चार जगह बात की। और सुधाकर को बताया कि एक-दो दिन में कोई अच्छी व्यवस्था कर वे सुधाकर की सहायता करेंगे।

सुधाकर के लिए यह सहारा बहुत ही बड़ा था कि उसके बॉस उसकी समस्या को समझ कर सहायता का आश्वासन दे रहे थे। वर्ना महानगरों में किसी को यह चिंता तो कतई नहीं रहती कि उनके साथ काम करने वाले किस मुसीबत में हैं, व कैसे जी रहे हैं।

दूसरे दिन सिक्का साहब ने सुधाकर को बुलाया। जब सुधाकर उनके चेम्बर में पहुँचा तो वे किसी से सुधाकर के बारे में ही बात कर रहे थे। बात पूरी कर उन्होंने उसे बताया कि उनकी एम्स में बात हुई है। उन्होंने ऑन लाईन एम्स की ओपीडी में स्वाति का रजिस्ट्रेशन करा दिया। ओपीडी में एक सप्ताह बाद का नम्बर मिला। उन्होने सुधाकर को समझाया कि नेक्सट मंगलवार को जाकर वहाँ ओपीडी के बाद डॉक्टर ऊनवाला से मिलना है। आगे की सारी बातें वे बता देंगे। साथ ही उन्होंने एकाउन्ट मैनेजर को बुला कर सुधाकर को पंद्रह हज़ार रुपये देने का बोल दिया था व खेमवाल को बता दिया कि अस्पताल जाने के लिए सुधाकर को जब ज़रूरत हो छुट्टी दे दी जाए। सुधाकर ने सिक्का साहब की सहृदयता आज देखी थी। पिछले पाँच साल में उसने सिक्का साहब की कम्पनी में सिर्फ ईमानदारी से काम किया था। आज उसे लगा कि वफादारी और ईमानदारी का फल कब और किस रूप में मिलता है। उसे सिक्का साहब आज उसके बॉस नहीं भगवान् महसूस हुए थे।

सिक्का साहब के बताए अनुसार सुधाकर दो दिन बाद एम्स में पहुँच गया। यह वह अस्पताल है जिसे देश के पहले प्रधानमंत्री प. जवाहरलाल नेहरू ने स्वास्थ सेवाओं के एक मंदिर के रूप में स्थापित

किया था। उन्नीस सौ छप्पन में बन कर तैयार हुए इस अस्पताल का उद्देश्य ही यह था कि देश के आम आदमी को एक ही स्थान पर सारी चिकित्सा सुविधाएँ सरकारी तौर पर मिल जाएँ। आज सुधाकर जब डीटीसी की बस से अपनी पत्नी और बच्ची को लेकर एम्स के दरवाज़े पर उतरा तो उसकी आँखों में यह अस्पताल आशा का सबसे बड़ा केन्द्र महसूस हुआ था। उसे लगा कि सिक्का साहब जैसे इंसान की तरह ही एम्स का हर आदमी है जो किसी भी बीमार के लिए धरती का जीता-जागता भगवान् है।

ओपीडी पर पहुँच कर उसने अपना रजिस्ट्रेशन बताया। उसके रजिस्ट्रेशन में ही डॉक्टर ऊनावाला का नाम लिखा था। ज़रूरी औपचारिकताएँ पूरी कर उसे बताया गया कि डॉक्टर ऊनावाला साढ़े बारह बजे मिलेंगे। सातवीं मंज़िल के कमरा नम्बर सात सौ इक्कीस में वे बैठते हैं।

लिफ्ट के सहारे सुधाकर सातवीं मंज़िल पर पहुँचा। कमरा नम्बर सात सौ इक्कीस के बाहर नेम प्लेट लगी थी ''डॉ.आबिद हुसैन ऊनावाला'' और उनके नाम के नीचे लिखा था ''एमबीबीएस, एमडी, पीडियाट्रिक्स, डीएम कार्डियोलॉजी।''

वे बाहर के सोफे पर बैठ गए। अटैन्डर ने उनसे एक पर्ची ली जिस पर सुधाकर ने मरीज का नाम स्वाती, उम्र चार माह, लिखा व नीचे सिक्का कार्गो से श्री बृजराज सिक्का के नाम का उल्लेख भी कर दिया। अटैन्डर ने बताया कि डॉक्टर साहब ओटी में हैं साढ़े बारह बजे तक आएँगे। तीन मरीज़ और पहले से ही बैठे हुए थे। और दो लोग सुधाकर के बाद आ गए थे।

सुधाकर वहाँ रखी किताबों व पत्रिकाओं को उलट-पलट कर देखने लगा। कमरे की हलचल से महसूस हो गया कि डॉक्टर साहब आ गए हैं। करीब पौने दो बजे सुधाकर को डॉक्टर ऊनावाला ने भीतर बुलाया। सुधाकर व स्मिता स्वाति को ले कर भीतर गए। भीतर जगह-जगह दिल के विभिन्न चित्र बने हुए थे। डॉक्टर साहब के बगल में दाहिनी तरफ बोहरा धर्मगुरु का चित्र लगा था। सुधाकर डॉक्टर के सामने बैठ गया। स्मिता को उन्होंने स्वाति को लेकर अपने पास बुलाकर बिठा लिया। पहले उन्होंने स्मिता से मौखिक बात-चीत करते हुए बच्ची की गतिविधियाँ, उसकी तकलीफ, उसके लक्षण पूछे। स्मिता ने बताया कि बच्ची चिड़ चिड़ी रहती है। रोती ज़्यादा है। दूध कम पीती है, साँस ज़ोर-ज़ोर से लेने लगती है,और बेहद सुस्त रहती है। डॉक्टर साहब ने स्टेथोस्कोप को बच्ची को हृदय और पीठ पर लगाया व पेट को दबा कर देखा। स्वाती का पेट दबाने पर वह रोने लगी। फिर डॉक्टर ने ब्लड रिपोर्ट देखी व ईको कार्डियोग्राफी रिपोर्ट देखी। डॉक्टर ने बच्ची को दुलारते हुए कहा समस्या तो बड़ी है लेकिन जो ऊपर वाले को मंज़ूर होगा वही होगा। उन्हेंने हृदय का सीटी स्केन कराने के लिए रेफर कर दिया। सीटी स्केन डिपार्टमेंट में बात की तो एक सप्ताह की वेटिंग बताई गई थी, वह भी तब जब डॉक्टर खुद बात कर रहे हैं। उन्होने सुधाकर को बताया कि वह सीटी स्कैन के लिए रजिस्ट्रेशन करवा ले। अगले बुधवार को उसका नम्बर आएगा तब आ कर स्केन करा लेना। क्या रिपोर्ट आती है फिर उसके बाद आगे का ट्रीटमेंट देखेंगे। साथ ही उन्होंने कुछ दवाएँ लिख कर दे दीं व बता दिया कि दवाई डिपार्टमेंट से दवा ले लेना। कैसे दवाई खिलाना है वह स्मिता को समझा दिया।

ओपीडी रजिस्ट्रेशन से सीटी स्कैन की रिपोर्ट आने मे पच्चीस दिन व्यतीत हो गए थे। सुधाकर व स्मिता के लिए एक-एक दिन भारी पड़ रहा था। उसने सोचा था कि जैसे ही वह एम्स में पैर रखेगा बच्ची का इलाज शुरू हो जाएगा। किन्तु यह तो अभी चप्पल घिसने की शुरूआत हुई थी। कहने को एम्स सरकारी अस्पताल है और यहाँ देश के उन आम नागरिकों को इलाज की सुविधा दी जाती है जो धन की पोटली लेकर किसी फाईव स्टार होटलनुमा अस्पताल में नहीं जा सकते। इस अस्पताल में भीतर जाकर सुधाकर ने पाया था कि देश के एक सामान्य नागरिक द्वारा अपना इलाज करना कितना असामान्य है। उसकी नज़रों के सामने सरकारों की वाह-वाही करते नामी-गिरामी अखबारों और पत्रिकाओं में छपने वाले पूरे पृष्ठ के विज्ञापन अपनी असलियत का मुखौटा उतार यहाँ पर अट्टहास करते प्रतीत हो रहे थे। कीड़ों -मकोड़ों जैसे कुलबुलाते लोग अपने बीमार के लिए दुआ करते हुए यहाँ महीनों पड़े रहते हैं और वीआईपी कल्चर के तहत नेता, मंत्री व अफ़सर विशेष श्रेणीयाँ पा कर भले-चंगे हो आते-जाते रहते हैं। सामान्य जीवन के आदी सुधाकर और स्मिता को अब अपने जिगर को टुकड़े के रूप में मिली स्वाति की एक-एक साँस के लिए संघर्ष करना था। उन दोनों ने संकल्प लिया था कि भले ही उन्हें अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर समाप्त करना पड़ जाए वे स्वाति की साँसों को थमने नहीं देंगे। अस्पताल में घिसती चप्पलों के साथ-साथ मंदिरों की चौखटों तक उनके माथे घिसना शुरू हो गए थे।

हार्ट सिटी स्कैन की रिपोर्ट लिए वे डॉक्टर आबिद हुसैन ऊनवाला के चैम्बर के बाहर खड़े थे कि अटैन्डर ने आवाज़ दी- ''स्वाति''

सुधाकर व स्मिता स्वाति को लेकर भीतर गए। डॉक्टर ने रिपोर्ट देखी। कुछ सलवटें उनके चेहरे पर आईं। ''सर्जरी.....सर्जरी के बिना बहुत मुश्किल है यह ठीक होना'' एक ठंडी सी आह भरी डॉ. ऊनावाला ने। स्मिता ने स्वाति को सहलाया और सुधाकर ने एक सिसकी ली। यह सब इस बात का संकेत था कि किसी तरह रोटी के लिए खटते हुए व्यक्ति के दरवाज़े पर रोग का दस्तक देना शांत झील में तूफान की खलबली जैसा है।

डॉक्टर के हाथों में थमी हुई हार्ट सीटी स्कैन के चित्र और टाईप रिपोर्ट मिलकर उनके चश्में की सतह से कह रहे थे कि स्वाति के हृदय में ''श्री पार्इंट सेवन स्क्वेयर एमएम का वेंटीकुलर सेप्टल डिफेक्ट होकर अशुद्ध रक्त को शुद्ध रक्त में मिलाकर शरीर को सप्लाई कर रहा है यह बच्ची के जीवन के लिए अत्यंत घातक है''। बच्ची की स्थिती आज ठीक नहीं है। बच्ची को तात्काल इंटेसिव केयर की ज़रूरत है। उन्होने भर्ती स्लिप बनाई और चिल्ड्रन इंटेसिव केयर यूनिट वार्ड में स्वाति को भर्ती करवा दिया।

चार दिन हो चुके थे स्वाति को एम्स में भर्ती हुए। चार-पाँच सौ रुपये का खर्चा रोज़ हो रहा था। सिक्का साहब व डॉ. ऊनावाला के रिश्ते बहुत मधुर थे सो वे सुधाकर का ध्यान रख रहे थे, सुधाकर के लिए यह बात

काफी राहत वाली थी।

आज फिर डॉ. ऊनावाला ने सुधाकर को अपने चैम्बर में बुलवाया था। उन्होंने सुधाकर को बताया कि कैसे बच्ची का हृदय दिक्कत दे रहा है। बे बोले- ''अगर यह एएसडी होता तो दवाओं से ठीक हो जाता। वीएसडी भी यदि दो एमएम स्क्वेयर तक का भी होता तो हम सर्जरी के बजाए दवाओं से ही ठीक कर लेते। लेकिन यह वीएसडी है और काफी बड़ा है। यह अपने-आप य दवाओं से ठीक नहीं होगा। हाँ दवाएँ कुछ साल तक उसे दर्द से राहत दिलाती रह सकती हैं। सुधाकर को उन्होंने बताया कि बच्ची की सर्जरी बेहद आवश्यक है। इसके लिए आपको सर्जरी डिपार्टमेंट से सम्पर्क कर रजिस्ट्रेशन कराना होगा। सर्जरी कब हो सकेगी व उसका क्या एस्टीमेट आएगा यह वहीं से पता चल सकेगा। ईश्वर पर भरोसा रखो सब ठीक हो जाएगा।''

''जी सर''-बस इतना ही कह पाया था वह और उसकी आँखें डबडबा आईं।

स्वाति की साँसों की गति सामान्य होने लगी थी। डॉ. ऊनावाला की दवाइयों ने असर किया था। किन्तु यह स्थाई उपचार नहीं था। अगर स्वाति को दुनियाँ में लम्बे समय तक जीना है तो उसे व उसके साथ उसके माता-पिता को उतना ही लम्बा संघर्ष करना था। सुधाकर भारत के सबसे बड़े और सबसे विश्वसनीय अस्पताल के सर्जरी विभाग में बात करने के लिए स्वाति की बीमारी के दस्तावेज़ लिए क्यू में खड़ा अपनी बारी का इंतज़ार कर रहा था।

अपने नम्बर पर वह भीतर गया। दस्तावेज़ दिखाए। आदेश हुआ पचास हज़ार रुपये जमा कराएँ। सुधाकर अचकचा गया, उसके मुँह से निकला- ''पचास हज़ार''

सामने बैठे व्यक्ति ने कहा- ''जी हाँ यह एम्स है इसलिए पचास हज़ार रुपये। किसी प्राईवेट में जाकर देखो तीन लाख का पैकेज कहेंगे और पाँच लाख वसूल कर लेंगे''।

''सर मैं तो बजार में खड़ा होकर अगर बिक भी जाऊँ तो बच्ची का ऑपरेशन न करा सकूँगा''। - सुधाकर ने कहा

''भाई यह तो बहुत मामूली खर्च है आप जल्दी बताएँ और भी बहुत से लोग क्यू में लगे हुए हैं''- सामने वाले सज्जन बोले।

''मैं अभी आया सर''- कह कर सुधाकर बाहर गया। उसने स्मिता से मोबाईल पर बात की फिर एटीएम पर गया। अपने खाते में जमा पैंतालिस हज़ार रुपये की पूँजी में से चालीस हज़ार रुपये निकाले। दस हज़ार रुपये सिक्का साहब द्वारा दिए गए पैसों में से बचे थे। कुल पचास हज़ार रुपये ले जाकर जमा करा दिए। उसे लगा अपनी बच्ची की ज़िंदगी उसने पचास हज़ार रुपये में इस अस्पताल से खरीद ली है।

सामने से उसे रसीद के साथ एक रजिस्ट्रेशन कार्ड दिया गया, जिस पर लिखा था- ''कार्डियो सर्जरी रजिस्ट्रेशन नम्बर 581/2018 और ऑपरेशन की तारीख 27 जून 2023''।

''सर शायद कुछ ग़लत टाईप हो गया, ज़रा देखिए तो''। -सुधाकर ने अपना रजिस्ट्रेशन कार्ड देते हुए कहा।

काउंटर पर बैठे सज्जन ने कार्ड लिया उसे देखा फिर कहा-''बेबी स्वाती पिता का नाम सुधाकर, डॉक्टर आबिद हुसैन ऊनावाला। सब सही तो है। क्या मिस्ट्रेक लग रही है आपको''।

''सर इसमें ऑपरेशन की तारीख मिस्ट्रेक से 27 जून 2023 लिखी है। 27 जून 2018 होगी, क्योंकि यह तो 2018 चल रहा है''। -सुधाकर ने कहा।

वे सज्जन हँस दिए और फिर गम्भीर होकर बोले- ''भाई साहब आप क्यू में हैं और यह क्यू इतनी लम्बी है कि आपका नम्बर 2023 में ही आ सकेगा। आपके पहले 5480 लोगों की हार्ट सर्जरी की जाना है। इसलिए आपको अगले पाँच साल तक वेट करना होगा''।

''सर, आप मज़ाक कर रहे हैं या सही कह रहे हैं'' ? ''अगर यह मज़ाक है तो कम-से-कम किसी की तकलीफ में तो आपको ऐसा मज़ाक नहीं करना चाहिए''- सुधाकर ने थोड़ा तल्खी से कहा।

''बंधु, मुझे यहाँ आने वाले हर व्यक्ति के दर्द और मजबूरी का एहसास है। मैं पिछले बाईस साल से यहाँ काम कर रहा हूँ। सच मानिए मैं बिल्कुल मज़ाक नहीं कर रहा। दु:खी और बेबस लोगों से ऐसा मज़ाक कर मैं पाप नहीं कर सकता। आख़िर मैं भी बाल-बच्चों वाला हूँ''। वह लगातार कहता चला गया- ''अगर सच कहा जाए तो यह इतना बड़ा संस्थान आम आदमी के लिए सिर्फ वेटिंग लॉन बन कर रह गया है। आपका दुर्भाग्य है कि आप न तो कोई वीआईपी हो और न ही उनके कोई रिश्तेदार। यहाँ हर आम आदमी क्यू में हैं और यह क्यू इतनी लम्बी है कि इसमें खड़े-खड़े ही लोग अपनों को दम तोड़ते देख सिर्फ तड़फ सकते हैं।''

सुधाकर ने एक मिनिट तक कार्ड को देखा। अपने कदम वापस लिए और भारी कदमों से बाहर निकला। बाहर अभी भी लम्बी क्यू लगी थी, जिनमें खड़ा हुआ एक-एक व्यक्ति उसे सुधाकर लग रहा था और उन सबकी बाहों में बिलखती-सिसकती अपनी साँसों को गिन रही स्वाति झूलती प्रतीत हो रही थी। उन्हीं थके कदमों से वह चिल्ड्रन वार्ड में गया। स्वाति दवाओं के असर से कुछ आराम पाकर सो रही थी। उसकी साँसें स्थिर थीं। स्मिता कुछ उनींदी सी बैठी थी। सुधाकर को देख कर उसने पूछा- ''हो गया रजिस्ट्रेशन ? कब है ऑपरेशन'' ? सुधाकर ने रजिस्ट्रेशन कार्ड स्वाति को देते हुए कहा- ''हम अभी क्यू में हैं। और यह क्यू उतनी ही लम्बी है जितनी लम्बी इस देश के प्रजातंत्र के ऑपरेशन की क्यू होती है''।

रजिस्ट्रेशन कार्ड थामें स्मिता उस पर लिखी तारीख देख रही थी। जिस पर लिखा था ''कार्डियो सर्जरी रजिस्ट्रेशन नम्बर 581/2018'', डेट ऑफ सर्जरी 27 जून 2023। उसने सामने टंगे कैलेंडर पर नज़र उठाई जो बता रहा था आज तो सोमवार 18 जून 2018 ही है। उसने स्वाति के कपाल को चूमा। दो गर्म-गर्म बूँदे उसकी आँखों से बेटी के माथे पर टपकीं। उसने सिसकी भरी और धीरे से बोली मेरी बच्ची तू अभी क्यू में है, और अपनी क्यू मत तोड़ना। फिर उसका सर आसमान की ओर उठ गया। स्वाति नें एक करवट बदली व फिर सो गई। सुधाकर एकटक उसे देखने लगा। जब कुछ सम्भला तो फिर स्मिता से रजिस्ट्रेशन कार्ड ले कर अपने बैग में सँभाल कर रख लिया। दुनिया में शायद यही उसकी और उसके जैसे हर सुधाकर की नियति है कि वह क्यू में है, ज़िंदगी की भी मौत की भी।

***

....कि तुम मेरी ज़िंदगी हो

डॉ. पूरन सिंह

'आप सुमन के पापा हो'

'जी, नहीं'

'तो'

'चाचा हूँ'

'चलिए, चाचा भी तो पापा ही होते हैं।' डॉक्टर बोला था।

'मेरे चाचा मेरे लिए पापा हीं है। पापा मैंने नहीं देखे। मेरे चाचा ने मेरे लिए बहुत दुख उठाए। कभी हम सभी भाई बहिनों को पता ही नहीं चलने दिया कि पापा क्या होते हैं, सर। मेरे चाचा बहुत अच्छे हैं।' सुमन के मन में, मेरे लिए छिपी श्रद्धा और सम्मान साकार होने लगा था।

डॉक्टर साहब कुछ नहीं बोले थे। उन्होंने सुमन को देखा था। उसकी बातों की सच्चाई को जानना चाहा था। फिर, अल्ट्रासाउण्ड्स, एम आऱ आई आदि की रिपोर्टें देखते रहे थे। मुझे हाथ से, बैठने का संकेत किया था। मैं वहीं उनके सामने ही कुर्सी पर बैठ गया था, 'आपसे एक ज़रूरी बात कहनी है।' डॉक्टर साहब ने मेरी तरफ देखा था। मैंने भी सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी थी मानों कहना चाहा था, 'कहो क्या कहना है, सर।'

'सुमन का केस थोड़ा सा कम्पलीकेटिड है। मेरे लिए, नॉर्मल स्थिति में कुछ भी नहीं है। अब चूँकि सुमन, अनमैरिड है इसलिए हमें फूँक-फूँककर कदम रखना होगा। आपको फेथ में लेकर काम करना ज़रूरी है।' वे बताए जा रहे थे।

'आप थोड़ा सा और स्पष्ट करें, सर।' मैं बोला था।

'ठीक कहा आपने। देखो, सुमन की ओवरी में सिस्ट है। सिस्ट बढ़ रही है। उसे निकालना होगा। निकल भी जाएगी लेकिन बहुत संभव है कि वह कुछ परेशानियाँ छोड़ जाए।' डॉक्टर साहब आगे बताते इससे पहले मैं बोल पड़ा था, 'मतलब'।

'मतलब ये कि हो सकता है सुमन शायद कभी माँ न बन पाए। वैसे ऐसा होगा नहीं लेकिन पॉइंट फाईव परसेंट संभावनाएँ रहती हैं।'

इसके आगे भी डॉक्टर साहब न जाने क्या-क्या क्रोनिकल बातें बताते रहे थे। मुझे तो लगा था कि उनका केबिन घूम रहा है। मैं चक्कर खा रहा हूँ। और ध्यान न दिया तो मैं गिर पड़ूँगा कि मेरे मुँह से निकल गया था, 'पानी'। डॉक्टर साहब पानी देते इससे पहले ही सुमन ने पानी की बोतल मेरी तरफ बढ़ा दी थी। मैंने आधी बोतल खाली कर दी थी।

'देखिए, सुमन के चाचा। आपको धैर्य से काम लेना होगा। सुमन अभी बच्ची है। आप बड़े हैं और समझदार भी। परिवार के अन्य लोगों को भी साहस देना होगा आपको। मुझसे आज तक कभी कोई चूक हुई तो नहीं है लेकिन फिर भी।' फिर अपने हाथों को उठाकर बोले थे, 'हज़ारों आपरेशन किए हैं मैंने। अब तक तो ऐसा हुआ नहीं।'

मैं चुप था

'तो ठीक है अगले फ्राईडे को सुमन को लेकर सुबह सात बजे आ जाना। उसी दिन आपरेशन कर लेंगे और अगले दिन छुट्टी मिल जाएगी। विश्वास है सब ठीक रहेगा।'

संपर्क : 240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर,नई दिल्ली-110008
मोबाइल : 9868846388

इतना कहकर डॉक्टर साहब ने हमें इजाज़त दे दी थी।

हम बाहर आ गए थे उनके केबिन से।

मैं अंदर-अंदर तो परेशान था लेकिन अपनी परेशानी प्रकट नहीं होने दे रहा था। बाहर भाभी और छोटेवाला इंतज़ार कर रहे थे। 'क्या कहा डॉक्टर ने।' भाभी बोली थी।

'कुछ नहीं। फ्राईडे को आपरेशन होगा और सैटरडे को ललिया (बेटी) को छुट्टी मिल जाएगी।' मैं सहज होने का साहस कर रहा था।

हम सब घर लौट आए थे।

अगले फ्राईडे को हम जल्दी ही हॉस्पीटल पहुँच गए थे। डॉक्टर साहब और नर्सें अपने-अपने काम में व्यस्त थे। डॉक्टर साहब ने मुझे देखकर छोटी वाली स्माइल दी थी। मैंने अपने दोनों हाथ जोड़ दिए थे। शायद कहना चाहा था, 'मेरे भाई की अमानत है। चूक न होने पाए, सर।' बेटी को आपरेशन थिएटर ले जाया गया था। भाभी वहीं बाहर वेटिंग रूम में पड़ी बैंचों पर बैठ गई थी। छोटेवाला भी वहीं बैठा था। मैं भी उन्हीं के पास साइड में बैठ गया था। मेरे अलावा, बहुत से और लोग भी बैठे थे। सभी का कोई न कोई आपरेशन थिएटर में था। कोई-कोई तो ऐसा भी था जो आपरेशन थिएटर के दरवाज़े की ओर ही देख रहा था जिधर से उसके अपने को अंदर ले जाया गया था।

प्राय: लोगों को कहते सुना है कि 'कोई काऊ को नाहि है' लेकिन हस्पतालों में ये बात झूठी साबित होती है। अगर कोई किसी का नहीं है तो ये बाहर बैठे लोग कौन है। बीच-बीच में, गार्ड या वार्डबॉय आकर किसी के नाम की आवाज़ लगा जाते। शर्मिला के साथ कौन है या फिर रजिया के साथ वाले आओ। जिससे लोगों का ध्यान बंट जाता था। अधिकांश के चेहरे उतरे हुए थे।

मैं बैंच पर बैठा सभी को देख रहा था। भाभी और छोटेवाला कुछ बातें करने लगे थे कि... कि...

.....कैसे भैया अपने छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर भगवान् के घर चले गए थे। भाभी के चार बच्चे हैं। दो बेटे और दो बेटियाँ। जब भैया की मृत्यु हुई थी तब

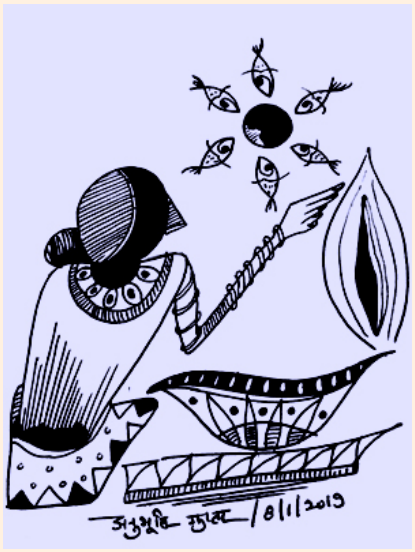

भाभी खूब जवान थी। चार बच्चे जल्दी-जल्दी हो गए थे। भैया बहुत ज़्यादा काम नहीं कर पाते थे। उन्हें टी. बी. हो गई थी। तब टी. बी. लाइलाज हुआ करती थी।जिसे होती उसका जाना तय होता था। भैया की मृत्यु पर अम्मा और घर के शेष लोगों ने भाभी को ही कोसा था। 'इसी की वजह से मेरा बेटा चला गया। खसम के बगैर कभी सोती तो थी नहीं। कमज़ोर शरीर था मेरे बेटे का। ये जवान लुगाई। लील लिया मेरे बच्चे को।' भाभी का साथ देने के बजाय, उन्हें दुत्कार और घृणा ही मिली थी। मेरा झुकाव भैया की ओर था। भाभी भी मेरे लिए महत्त्वपूर्ण रही। उस समय सुमन अपनी मम्मी का दूध पीती थी जब भैया अपनी अंतिम यात्रा पर निकल गए थे। बड़ा बेटा ही थोड़ा सा समझदार था। उसी ने घर संभाला था। मैंने साथ दिया भाभी और बच्चों का जिसका परिणाम ये निकला कि मुझे भाभी के साथ जोड़ा गया। 'एक को तो लील गई अब इसे भी लील लेना।' भाभी सूनी-सूनी आँखों से सभी को देखती रहती। स्थिति तो यहाँ तक आयी कि मेरी पत्नी भी मुझे ग़लत समझने लगी थी। ख़ैर, आप जब भी कोई अच्छा काम करेंगे, बाधाएँ आपका मार्ग रोककर खड़ी हो जाएँगी। मैं अपवाद कहाँ था।

बड़े बेटे की मेहनत, लगन और परिवार के प्रति निष्ठा, भाभी की ईमानदारी और मेरा साथ, आज भाभी के चारों बच्चे समर्थ हैं। जो भाभी एक-एक पैसे के लिए तरसती थी आज उसको, उसके दोनों बेटों ने अपने अपने क्रेडिट कार्ड दे दिए हैं। बड़ी बेटी का ब्याह कर दिया है। बेटे भी ब्याह दिए हैं। बस सुमन ही बची है। सुमन भी भारत सरकार में सैक्शन आफ़िसर है, वस्त्र मंत्रालय में। किसी तरह का कोई दुख नहीं है भाभी के लिए। हाँ भैया को वापिस तो भगवान् भी नहीं ला सकते। वह दुख तो रहेगा ही। रही बात मेरी, तो मेरा क्या है। कभी वादा किया था भाई से कि जीवन की आख़िरी साँस तक बच्चों को आपकी कमी महसूस नहीं होने दूँगा। वही पूरा कर रहा हूँ। अब ये बात और है कि.....।

सोच ही रहा था कि वार्डबॉय ने आवाज़ लगाई थी, 'सुषमा के साथ कौन है।' 'मैं', न जाने कब बोल गया था मैं। भाभी ने मुझे देखा था, 'क्या हुआ, सब ठीक तो है। वह सुषमा को बुला रहा है। सुमन को नहीं।' फिर पानी की बोतल मेरी ओर बढ़ाई थी, 'लो पानी पियो। आप ऐसे करोगे तो हम...हम कैसे करें।'

'अरे, वो, बस ऐसे ही।' मैंने कह दिया था। उन्हें नहीं बताया था कि भाभी, मैं मीलों दूर चलकर लौट आया हूँ।

सब पेशेंट के नाम बुलाए जाते लेकिन मेरी सुमन का नाम नहीं बुलाया जा रहा था। देखते-देखते पौने चार बजने को आए। हम सब की आँखें आपरेशन थिएटर के दरवाज़े की ओर लगी थीं और कान खड़े थे।

फिर वार्डबॉय ने आवाज़ लगाई, 'सुमन के साथ कौन है।' मैं एक ही पल में उसके सामने। भाभी और छोटेवाला तो सामान ही सँभालते रहे थे।

'अरे आपकी ज़रूरत नहीं है। कोई लेडी भेजो।' वार्डबॉय गुर्राया था।

'क्यों।'

'अरे, भाई गाईनी का मामला है। आप वहाँ क्या करेंगे।' और उसने मुझे ऐसे दुत्कारा था मानों मैं कुत्ता होऊँ।

तब तक भाभी भी आ गई थी। भाभी वार्डबॉय के साथ अंदर चली गई थी। कुछ देर बाद सुमन को वार्ड में शिफ्ट किया जाना था। दो महिला कर्मचारी उसे स्ट्रेचर पर लिए वार्ड में जा रही थीं। वार्ड, आपरेशन थिएटर से थोड़ा सा दूर था। मैं भी स्ट्रैचर के साथ-साथ ही चलने लगा था। रंभा, उर्वशी, कामायनी को मात देने वाली मेरी सुमन का चेहरा पीला पड़ा हुआ था। होंठ पपड़ाए हुए थे। शेष शरीर ढका था। मैं रोक न सका था,

'बाबू, बाबू, सुमन, ए सुमना....मैं चाचा....मुझे देखो, बाबू।' सुमन ने थोड़ी सी आँखें खोली थी फिर बंद कर ली थीं।

सुमन को वार्ड में शिफ्ट कर दिया गया था। भाभी उसकी देख रेख के लिए थी। मैं और छोटेवाला वार्ड के बाहर ही खड़े थे। अभी बहुत ज़्यादा देर भी नहीं हुई थी कि भाभी, वार्ड के बाहर आईं और बोली थीं, 'डॉक्टर साहब बुला रहे हैं।', मैं यंत्रचलित सा उनके सामने था।

'आपकी बेटी का आपरेशन सक्सेस रहा। वह ख़तरे से पूरी तरह बाहर है, लेकिन...' इसके पहले कि डॉक्टर कुछ आगे बोलता मैं बीच में कूद पड़ा था, 'लेकिन माने क्या डॉक्टर साहब।'

'लेकिन माने ये कि अब सुमन कभी माँ नहीं बन पाएगी। मैंने बहुत कोशिश की लेकिन क्या करता, सिस्ट ने जड़ें पक़ड़ ली थी। बेटी को बचाना बहुत ज़रूरी था हमारे लिए पेशेंट इज इसेंशियल। बच्चे पैदा करने की तो तमाम टेक्नीक हैं मार्केट में। लेकिन इंसान को बचाने की....नो...नो वन। आई डिड राईट, यू डोंट वरी। सुमन को मत बताइएगा और यहाँ तक कि उसकी माँ को भी नहीं। ये बात सिर्फ मैं जानता हूँ या फिर आप। सुमन की माँ औरत ही है। और फिर ये क्रूयल समाज। आई थिंक यू बेटर अण्डरस्टैण्ड।' और मेरी कोई बात सुने बिना ही बाहर चले गए थे डॉक्टर साहब। उनके जाते ही महिला कर्मचारियों ने मुझे बाहर जाने के लिए कहा था। मैं वार्ड से बाहर आ गया था। भाभी, सुमन के पास चली गई थी। मैं और छोटेवाला वहीं, वार्ड के बाहर ही गैलरी में बैठ गए थे।

मैं बार-बार अपने मन में यही कह रहा था, 'ये क्या हो गया भगवान्, मेरी बच्ची के साथ। उसकी रक्षा नहीं की तूने, तू सच में बहुत बड़ा निर्दयी...।' कि सोचने लगा था.....

'चाचा एक बात कहनी थी आपसे।' एक दिन शाम को चाय पीते समय बोली थी सुमन मुझसे।

'कहो।'

'ऐसे नहीं, प्यार से पूछो।' और पीछे से मेरे गले में बाहें डाल दी थीं। छोटी थी तब, ऐसे ही किया करती थी जब चिज्जी या हप्पा मांगती थी।

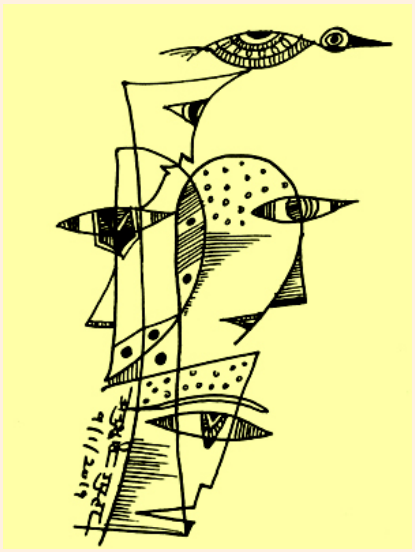

'प्यार, मेरे पास कहाँ है बेटा। अगर प्यार होता तो आज मेरे अपने....।' इसके आगे नहीं बोलने दिया था सुमन ने। और कहा था, 'अगर आप में प्यार नहीं है तो दुनिया के किसी भी आदमी में प्यार नहीं होगा।'

'अच्छा बताओ क्या बात है।' मैंने चाय का कप प्लेट में रखते हुए कहा था।

'चाचा।'

'हाँ।'

'चाचा।'

'अरे भैया, अब चाचा से आगे भी बढ़ेगी या चाचा पर ही अटकी रहेगी। और पहले तो एक काम करो मेरे ऊपर से हटो। यहाँ बैठो आकर। कितनी बड़ी हो गई है लेकिन फिर भी बच्ची ही बनी रहती है। कोई कहेगा इसे देखकर कि ये अफ़सर होगी।' मेरे प्यार में अथाह गहराई थी।

सुमन मेरे पास ही सोफे पर बैठ गई थी। बिल्कुल मुझसे सटकर। फिर उसे चैन नहीं पड़ा तो मेरी गोद में सिर रख लिया था। 'अब सुनो।'

'मैं एक लड़के से....।' कहाँ बोलने दिया था, मैंने उसे आगे। मैं ही बोला था, 'प्यार करती हूँ, राईट।'

बस ग़ज़ब हो गया था। 'आपने कैसे जाना, बताओ....बताओ...ये बात आपको किसने बताई। मम्मी तक नहीं जानती। अच्छा उसी ने बताया होगा।' गोद से उठकर बैठ गई थी।

'अरे मुझे किसी ने नहीं बताई। आख़िर मैं, तेरा चाचा हूँ भाई।' मैं बोला था।

'आप चाचा नहीं हैं। आप पापा हैं, पापा.....सिर्फ पिता ही होता है जो अपने बच्चों के मन की बात जान लेता है।' और उसकी आँखों की कोरों में गीलापन गहरा हो गया था। मैंने आँसुओं को बाहर नहीं आने दिया था। आँसू पी लेने में मुझे महारत हासिल है।

'मेरे ऑफ़िस में ही है। मेरा ही बैचमेट है। मुझसे तीन नम्बर नीचे उसका नाम था। हम दोनों ने साथ-साथ ज्वाइन किया था।' बताए जा रही थी सुमन, 'बहुत रईस घर का है। अकेला बेटा है अपने माँ-बाप का। मुझे बहुत प्यार करता है, चाचा।'

'और तुम।'

'मैं भी।' उसके इतना कहने पर मैंने उसकी ओर देखा था। फिर क्या था। 'हम ना... मज़ाक बना रहे हैं मेरी।' और फिर तो सोफे से उठकर मेरी पीठ पर लद गई थी। 'और बनाओगे मज़ाक, बताओ, बताओ।'

'अरे अब उतर भी। मैं बूढ़ा आदमी हूँ। अब तू बच्ची नहीं है। और आज तो साबित हो गया कि तू बच्ची नहीं है। अच्छा चल आगे बता....।' मैने उसे पकड़कर अपने पास फिर बैठा लिया था।

'चाचा वह मुझे बहुत प्यार करता है। मैं भी। एक दिन कहने लगा मुझसे। चाचा सुनो तो।' और मुझे झकझोरने लगी थी, 'कि सुमन, हमारी माँ कहती हैं हमारे घर में खूब सारे बच्चे चाहिए। दो, चार, पाँच, नौ, ग्यारह।'

तभी न जाने क्यों मुझे डॉक्टर के कहे शब्द याद आने लगे थे कि अब... सुमन कभी, माँ...नहीं।

'क्या।' मैं अनायास ही बोल पड़ा था।

'हाँ चाचा, उसकी माँ चाहती है कि उनके घर में खूब सारे बच्चे हों। मैंने तो कह दिया, सिर्फ दो बच्चे ही करेंगे।, ठीक कहा न चाचा मैंने।'

'हाँ' मैं कब बोल गया था मुझे पता ही न चला। होश तो तब आया जब एक महिला कर्मचारी मुझ पर चिल्लाई थी, 'चलो, चलो भागो यहाँ से....वहाँ जाकर बैठो... ये कोई बैठने की जगह है। चलो....हटो....।'

छोटेवाले ने कहा भी था, 'तुम्हारा दिमाग खराब है। ऐसे बात करते हैं। मेरे चाचा बहुत बड़े अफ़सर हैं।'

'अफ़सर होगा अपने ऑफ़िस में। यहाँ तो वही होगा जो हमें कहा गया है।'

उसकी बात का बुरा मैंने नहीं माना था। मैं वहाँ से उठकर चला आया था। छोटेवाला साथ-साथ था।

दो दिन वार्ड में रखने के बाद उसकी छुट्टी हो गई थी। डॉक्टर ने फिटनेस सर्टीफिकेट दे दिया था। सुमन ने ऑफिस ज्वाइन कर लिया था और फिर एक सप्ताह की छुट्टी ले ली थी।

अब वह घर पर ही आराम करती थी। रोज़ शाम को मेरे पास आकर बैठ जाती।

तभी एक शाम.....

.....मैं थक गया था। ऑफिस में काम ज़्यादा रहा था। दरअसल एक एग्रीमेंट था इंडोनेशिया के साथ भारत का। उसी का ड्राफ्ट तैयार करते-करते सब करम हो गए थे सो बैड पर लेटा था कि सुमन आ धमकी।

'और हैण्डसम, कैसे हो?'

'तू बता तेरा प्यार कैसा चल रहा है।' मैं कहाँ चूकने वाला था। शरीर ही तो थका था। मुँह थोड़े ही न थका था।

'सोलिड।'

'अरे तूने उस गधे का नाम तो बताया ही नहीं उस दिन।' मैं चिढ़ाने में भी माहिर हूँ।

'रणविजय सिंह।'

'माने ठाकुर साहब और तू....।'

'चाचा हम नहीं। अब मैं बड़ी हो गई हूँ। और वैसे भी प्यार में जातिबंधन हैज नो मीनिंग।' वह बोली थी। 'चाचा आज क्या हुआ...सुनो तो....आज उसकी माँ का फोन आया था। जानते हैं आप उसकी माँ क्या कह रही थी।' और उसने मेरे चेहरे की ओर देखा था।

मैंने आँखें घुमाई थीं।

'कह रही थी। सुमन जल्दी से घर आ जाओ दुलहिन बनकर। घर सूना-सूना लगता है। और जल्दी से तीन चार बच्चे।'

'ऐं', मैं लेटा था बैड पर सो उठकर बैठ गया था। और डॉक्टर का चेहरा मेरी आँखों में घूम गया था...सुमन अब कभी माँ...नहीं....

सुमन नहीं समझ पाई थी। उसे लगा था कि उसके मुँहफट होने से मैं नाराज़ हो गया हूँ तभी तो बोली थी। 'सॉरी, सॉरी...चाचा। गलती हो गई। आप मुझे डाँटते ही नहीं...इसीलिए...अब आगे से ध्यान रखूँगी।'

और इतना कहकर कान पकड़कर मेरे सामने खड़ी थी। ठीक वैसे ही जैसे बचपन में कोई गलती करती और मैं डाँटता तो, ऐसे ही खड़ी हो जाती थी। मैंने उसे सहज किया था और बोला था, 'बेटा एक बात सुनो मेरी।'

'जी, चाचाजी।'

'तुम कितना प्यार करती है उस लड़के से।'

'अपने आप से भी ज़्यादा।'

'तुम यह भी जानती हो, प्यार में झूठ बोलना, धोखा देना, अविश्वास करना प्यार को कमज़ोर बनाता है। प्यार में स्वाभिमान बहुत ज़रूरी है। घमण्ड नहीं। और स्वाभिमान तभी रहता है जब आप पूरे के पूरे ईमानदार हों। प्यार में डर नहीं होना चाहिए।' इन बातों पर वह मुझे बड़ी गहनता से देख रही थी।

'तुम समझ रही हो मैं क्या कहना चाह रहा हूँ।'

'हाँ।' वह बोली थी।

'तो जाओ और उससे कह दो कि तुम कभी माँ नहीं बन पाओगी।' सहज तरह से मैं कभी नहीं कह सकता था ये बात। दिल पर पत्थर रखकर ही तो बोला था मैं।

और सुमन.....वह तो सचमुच पाषाण प्रतिमा सी मुझे निहारे जा रही थी।

मैंने उसे हिलाया था। डॉक्टर की कही पूरी बात बताई थी। बहुत समझाया था। वह कितना समझी कितना नहीं, ये तो वही जाने। हाँ जाने को हुई तो फिर मैंने उसे पुचकारते हुए कहा था, 'बेटा, मेरी लाडो, मेरी राजकुमारी.....उसे सब बात स्पष्ट बताना। देखो अगर वह तुम्हारा होगा तो तुम्हारे पास आ जाएगा और अगर नहीं होगा तो तुमसे दूर चला जाएगा। तुम दोनों ही स्थितियों में जीत में रहोगी। कम से कम अकेले में बैठोगी तो खुद को दोष तो नहीं दोगी कि तुमने उसे छला है। किसी को भी छल लो लेकिन स्वयं से नहीं भागा जा सकता।'

सुमन चली गई थी अपने कमरे में।

दो दिन तक मेरे पास नहीं आई थी।

कल आई थी मेरे पास। मैंने उसकी ओर प्रश्न करने वाली आँखों से देखा था मानों कहना चाहा हो 'क्या हुआ।'

'चाचा मैंने उसे सारी बातें बताई जैसी आपने मुझसे बताई थीं।' सुमन बताने लगी थी। उसे देखकर लगा था कि न जाने वह, कुछ ही दिनों में बहुत बड़ी हो गई हो।

'फिर।'

फिर उसने मुझसे कहा, 'सुम्मा एक बात बताओ यही घटना हमारी शादी के बाद हुई होती तो.....तो क्या मैं तुम्हें छोड़ देता।'

'तब दूसरी बात होती। अभी सब कुछ तुम्हारे हाथ में है। तुम्हें दूर तक सोचना होगा।....और हाँ, माँ का कैसे करेंगे। माँ को खूब सारे बच्चे चाहिए।' मैं निर्दयी हो गई थी।

'माँ को मना लूँगा। मान जाएगी माँ। माँ बहुत अच्छी है। माँएं अच्छी होती ही हैं। तुम्हें बहुत चाहती है।' वह बोला था ।

'चाहत और यथार्थ में ज़मीन-आसमान का फर्क होता है। अच्छा एक काम करो....पहले खूब सोच विचार कर लो फिर देखेंगे।' मैंने कहा था।

'मुझे अकेला मत छोड़ो सुमन। मैं रह न पाऊँगा तुम्हारे बिना।' फिर घुटनों के बल बैठ कर, दोनों हाथ बढ़ा कर, मेरी आँखों में आँखें डाल कर बोला, '....सुमन, तुम मेरी ज़िंदगी हो।'

मैंने उसके हाथ अपने हाथों में भर लिए थे। बताए जा रही थी सुमन और मेरे गले लगकर बड़ी देर तक बिलख-बिलखकर रोती रही थी।

और मैं उसके सिर पर प्यार से हाथ फिराता रहा था। आँखें तो गीली मेरी भी थीं कि....कि कुछ शब्द हवा में तैरने लगे थे.....कि तुम मेरी ज़िंदगी हो।

***

भैंस उसी की - लाठी जिसकी

पूरन सरमा

मेहता साहब सवेरे-सवेरे ही आए और बोले 'माफ करना शर्मा, मैंने तुमसे कल भला-बुरा कहा।' मैं आश्चर्य के साथ बोला 'क्या बात कर रहे हैं मेहता साहब, आपने मुझे कभी भला-बुरा नहीं कहा।'

'तुम्हें याद नहीं है शर्मा, तुम भूल जाते हो। मैंने कल तुमसे बदतमीज़ी की थी। इसलिए भाई माफी माँगता हूँ।'

'चलो आपने भला-बुरा कहा भी होगा, लेकिन आप बड़े हैं क्या हुआ अगर कह दिया तो। आप और मुझसे माफी माँगेगे। ऐसा नहीं हो सकता।' मैंने कहा तो मेहता जी बोले 'अरे भाई हो रहा है। संसद में ही देख लो पहले जानबूझ कर बदतमीज़ी करते हैं और बाद में माफी माँग लेते हैं।'

'संसद की बात अलग है मेहता साब। वहाँ तो रोज़ ऐसा होता है। वहाँ बदतमीज़ों की क्या कमी है। आख़िर उन्हें हमने ही तो चुनकर भेजा है। वे हमारे लिये लड़ते हैं झगड़ते हैं। यहाँ तक कि दलगत राजनीति से प्रेरित होकर मनमुटाव तक कर लेते हैं। इसलिये हमारे लौकिक जीवन में बड़ा छोटे से माफी माँगे, शर्मशार करने वाली बात है।' मैंने कहा तो मेहता साहब बोले 'भाई शर्मा, मैं तो संसद का समाचार पढ़कर दौड़ा चला आया। पता नहीं मैंने तुमसे कुछ ग़लत कह दिया हो। तुमने तो बुरा नहीं माना। लेकिन मैं भी इतना बुरा नहीं हूँ कि माफी भी नहीं माँगूँ।'

'आप मुझे शर्मिंदा कर रहे है। आजकल सब चलता है। माफी नहीं भी माँगते तो मैं आपका क्या बिगाड़ लेता। इसलिये इतना मत सोचा करो। नेताओं को देखो। अब तो गाली-गलौच संसद में मारा-पीटी तक करते हैं। इतना अमर्यादित आचरण पहले कभी नहीं देखा। महिलाओं तक से बदतमीज़ी हो रही है।' मैंने कहा तो मेहता साहब मूड़ में आ गए, बोले 'शर्मा, चाय बनवाओ। विषय अच्छा है। इस पर बातचीत हो जाए, तो घण्टे दो घण्टे रविवार के आसानी से निकल जाएँगे।'

मैं सन्न रह गया। मुझे लगा मेहता साहब बदतमीज़ी पर उतर आए हैं। मुझे मॉर्निंग वॉक पर जाना था और उसके बाद पत्नी की दवा लेने। दोनो ही ज़रूरी काम ध्वस्त होने वाले थे।

संपर्क : 124/61-62, अग्रवाल फार्म,
मानसेरावर, जयपुर-302020
मोबाइल : 09828024500

मैंने सोचा कि अब क्या किया जाए। मन ने कहा बदतमीज़ी, बदतमीज़ी को मारती है। इसलिये अब समय लिहाज छोड़ने का है। मैं बोला 'मेहता साहब, यह समय तो मेरे मॉर्निंग वॉक का है। यह शाश्वत विषय है। इस पर फिर कभी सही।'

'शर्मा कमाल कर दिया तुमने तो। बदतमीज़ी की हद होती है। तुमने तो औपचारिकता का भी परित्याग कर दिया है। मैंने बढ़कर चाय की पेशकश की है और तुम मॉर्निंग वाक का बहाना करके मुझे टरका रहे हो। एक दिन घूमने नहीं जाओगे तो शुगर नहीं बढ़ जाएगा। चलो पहले चाय बनवाओ।' मेहता हठधर्मिता पर उतर आए थे। मैंने भी पैंतरा मारा 'मेहता साहब मैं चाय घूमने के बाद पीता हूँ। आप माफी माँगने आए थे या मेरा खून पीने?'

मेहता साहब की आँखों से क्रोध की चिंगारियाँ निकलने लगी, वे चीखे 'शर्मा मैं चाय पीकर जाऊँगा।'

मै लगभग डर गया, तभी मेहता की चीख सुनकर पत्नी आ गई। आते ही बोली 'क्यों क्या बात हुई मेहता साब? आप नाराज़ क्यों हो रहे हो?'

'अरे मिसेज़ शर्मा, मामूली सी बात है। मैंने कहा कि मैं चाय पीकर जाऊँगा और शर्मा कह रहा है कि उसका घूमने का वक्त हो गया। तनिक भी तमीज़ नहीं है इसे। मैंने आते ही अपनी बदतमीज़ी की माफी माँगी, लेकिन इसने सारे नियम-कायदे, छोटे-बड़े का लिहाज ताक में रखकर चाय की बात को टाले जा रहा है। तुम भी सुन लो मिसेज़ शर्मा मैं चाय पिये बिना यहाँ से नहीं जाने वाला।' मेहता जी का व्याख्यान सुनकर पत्नी ने मुझे और मैंने पत्नी को देखा। मुझे लगा यह ज़माना जिसकी लाठी-उसकी भैंस का है।

मजबूरन हमें चाय बनवानी पड़ी। बेमन से चाय पीकर उन्हें विदा किया। पत्नी बोली 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान। उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। अच्छी माफी माँगने आए थे।' लेकिन हम विवश थे।

उस दिन मैं घूमने भी नहीं गया और मेहता की बदतमीज़ी पर पूरे दिन सोचता रहा। संसद में भी आजकल लगभग यही हो रहा है।

***

ग़ज़ल

हमीद कानपुरी की ग़ज़लें

सही बात कहना हिमाकत नहीं है।
हक़ीक़त बयानी बगावत नहीं है।
सभी मालमत्ता मेरे नाम है पर,
उसे छू सकूँ ये इजाज़त नहीं है।
नबी पर यक़ीं है ख़ुदा पर भरोसा,
कहीं कुछ किसी से शिक़ायत नहीं है।
है बेकार आना जहाँ में हमारा,
वतन से जो अपने मुहब्बत नहीं है।
इबादत का तेरी नहीं फायदा कुछ,
ख़ुदा से नबी से जो उल्फत नहीं है।
नफा और नुकसान मत रोज़ जोड़ो,
हुकूमत चलाना तिजारत नहीं है।
वज़ारत तो बदली हुआ कुछ नहीं पर,
सवारी की अब भी हिफाज़त नहीं है।
खुली जो वकालत करे नफरतों की,
कहीं से भी अच्छी सियासत नहीं है।
हुकूमत बदलना है फितरी अमल इक,
किसी की ये ज़ाती रियासत नहीं है।

***

बदी की कामनाओं का बहुत अफ़सोस होता है।
सभी बेजा खताओं का बहुत अफ़सोस होता है।
शिफा तो दे न पाईं कुछ वरन नुकसान कर डाला,
उन्ही नकली दवाओं का बहुत अफ़सोस होता है।
ज़माने भर में चर्चा का विषय है बोल्ड लुक जिनका,
हमें उन कजअदाओं का बहुत अफ़सोस होता है।
मेरी कुरबानियाँ भी जब उन्हे लगतीं हैं बेमानी,
अभी तक की वफाओं का बहुत अफ़सोस होता है।
जो मुझसे हो चुकीं अब तक बिना समझे बिना जाने,
यक़ीनन उन ख़ताओं का बहुत अफ़सोस होता है।
उड़ा कर ले गईं बादल बरसने आए थे जो कल,
अभी तक उन हवाओं का बहुत अफ़सोस होता है।
नहीं हमने वफा की कुछ नहीं अफ़सोस है उसका,
जहाँ भर की जफाओं का बहुत अफ़सोस होता है।
ग़लत हमने किया जो कल वही नेचर ने लौटाया,
बिगड़ती अब फिजाओं का बहुत अफ़सोस होता है।
थी करनी और की लेकिन सज़ा हमको मिली जिसकी,
उन्हीं सब यातनाओं का बहुत अफ़सोस होता है।

***

काम आसाँ हों कि हों मुश्किल करो।
लक्ष्य अपना हर तरह हासिल करो।
मत नहीं अनुदान दे हासिल करो।
नस्ल पूरीको नहीं काहिल करो।
एक ही रब पर करो मरकूज़ तुम,
चित्त को अपने नहीं गाफिल करो।
जी हुज़ूरों को बहुत शामिल किया,
अब दलों में आदमी शामिल करो।
चापलूसी बन्द कर दो अब हमीद,
काम करके मर्तबा हासिल करो।

***

उन्हें लज्जा नहीं आती उन्हें लज्जा न आने दो।
हमें सरहद पे जाकर के ज़रा सर काट लाने दो।
शहादत ये जवानों की नहीं हो रायगाँ हरगिज़,
किया इस काम को जिसने उसे जग से मिटाने दो।
बुज़ुर्गों ने लहू देकर बचाया था जिसे कल तक,
पसीना अब बहा कर के हमें उसको सजाने दो।
हमारे खून से होली जिन्होंने आज खेली है,
खुद अपने खून से अब तो ज़रा उनको नहाने दो।
चलो चलते हैं सरहद पर वहाँ आकर जमे दुश्मन,
यहाँ नारे लगाते हैं उन्हें नारे लगाने दो।

***

संपर्क: अब्दुल हमीद इदरीसी, 179, मीरपुर, कैण्ट, कानपुर-208004
मोबाइल:9795772415

पुस्तक-महाकुम्भ पर नारदीय रपट

कमलेश पाण्डेय

हे प्रभु! जब दिल्ली नगरी में हाड़ कँपाने वाले दिन-रात थे, ऐसा घना कोहरा था कि कवि के शब्दों में वह किसी को किसी की व्यक्तिगत आलोचना प्रतीत हो सकता था, ऐसे समय में इस वर्ष भी वहाँ एक विशाल मेला लगा जिसे लोग प्यार से पुस्तकों का महाकुम्भ कहते हैं। मेले से क्रुद्ध प्राणी इसे क्या कहते हैं, इस पर कोई आधिकारिक टिप्पणी उपलब्ध नहीं है, यद्यपि विगत वर्षों में यहाँ सम्पन्न गतिविधियों का प्रभाव मेलोपरांत लेखकों के बीच पर्याप्त उत्तेजना, क्षोभ, लानत-मनालत, गाली-गलौज एवं मार-पीट तक में दृष्टिगोचर हुआ है। जहाँ तक मेले का प्रश्न है, ये हरित उत्सव की भाँति उछाह-उमंग के साथ सौहाद्रपूर्ण ढंग से ही सम्पन्न हुआ। इसे महाकुम्भ कहने की प्रथा इस कारण है कि जिस प्रकार प्राणी-मात्र चाहे प्रतिदिन स्वच्छ जल में स्नान करता हो, जब तक कुम्भ में लाखों अन्य प्राणियों के साथ कीचड़-सदृश जल में डुबकी न लगा ले, पुण्य का अधिकारी नहीं माना जाता, उसी प्रकार चाहे साहित्यिक कृतियाँ यत्र-तत्र-सर्वत्र विमोचन-विमर्श, सम्मान व पुरस्कार आदि से विभूषित हो लें, वही सारे कर्मकांड यदि विश्व पुस्तक-मेले में संपन्न हों तो प्राप्त पुण्य मोक्ष स्तर का माना जाता है।

हे प्रभु, जिस प्रगति मैदान में ये महाकुम्भ आयोजित था वहाँ न कोई मैदान था न किसी वस्तु की चालू प्रगति के संकेत। यमुना-तट भी कुछ योजन दूर ही था। जितनी भूमि दृश्य थी उस पर कुछ न कुछ बिक रहा था, हॉल में किताबों तथा बाहर स्टालों पर छोले-भटूरे व ब्रेड-पकौड़े में बिकने की प्रतियोगिता थी, जिसमें खाद्य-पदार्थ बहुत आगे चल रहे थे। मानव समुद्र और उसका व्यवहार अवश्य महाकुम्भ मेले से तुलनीय था। यदा-कदा दो प्राणी विगत मेले में बिछुड़े भ्राताओं की भाँति गले से चिपट जाते, पुस्तकादि के स्मृति-चिह्न लेते देते और पुनः बिछुड़ लेते। अधिकाँश मेलार्थियों के मुख पर तमाशा देखने-सी उत्तेजना थी। जहाँ भीड़ दिखती उधर ही लपक जाते थे।

हे नारायण, इस वर्ष भी मेले में श्रद्धा, क्षमता व जुगाड़नुसार अनेक आकार-प्रकार व साज-सज्जा के शिविर लगे, जिनमें सद्य-प्रकाशित, पुनर्प्रकाशित, संकलित, अनेकानेक बार संकलित साहित्यिक कृतियाँ नए-नए कवरों का घूँघट ओढ़े बैठीं। इनमें अनेक के घूँघट पहले उलटे जा चुके थे, फिर भी नई-नवेली-सी ही बैठीं। इनकी नथ उतारने को तत्पर रसिक गण सजे-धजे महफिल में मौज़ूद थे। ढेरों ऐसी किताबें भी थीं जो प्रासंगिकता से मुक्त, काल से परे थीं, उन्हें भी मोक्ष दिलाने को तत्पर पंडों का एक समूह हर ओर मंडराता रहा। लेखक-मंच नाम से कोने में स्थापित मोक्ष-अनुष्ठान-कुण्ड पर आसीन पंडित गण कुछ सिद्ध मन्त्रों का पाठ करने के उपरान्त सामूहिक रूप से खड़े होकर एक या अनेक

संपर्क: बी-260, पॉकेट-2, केंद्रीय विहार, सेक्टर-82, नोएडा, उप्र 201304
मोबाइल : 9868380502

पुस्तकों का विमोचन-संस्कार सम्पन्न करते भये। मंच के समक्ष कुछ तटस्थ से श्रोता भी आवागमन करते रहे। कुछ बैठते, कुछ उठ जाते तो कुछ मंच की ओर ताकते हुए गुज़र जाते। कई अवसरों पर तो श्रोताओं से अधिक वक्ताओं की ही अधिक उपस्थिति पाई गई, बल्कि कोई श्रोता-दर्शक न होने की स्थिति में भी बहस व विमोचन कर्म यथावत् सम्पन्न हुए। कुछ विमोचक तो इतने सिद्ध थे कि चमकीली पन्नियों में बँधीं पुस्तकों को छूकर उनमें लिखे कथ्य बाँच लेते। हर कृति, हर विषय पर सामान अधिकार रखने वाले ये महाज्ञानी हर मंच पर उपस्थित होकर सहस्त्रों पुस्तकों का विमोचन कर गए। कुछ ही शब्द समूहों को विभिन्न प्रकार के आरोह-अवरोहों और आवृत्तियों में कोटि-कोटि बार बोल गए। किन्तु सत्य कहता हूँ प्रभु, मुझे समझ नहीं आया कि क्या बोले।

हे नारायण, जितने विमोचन संस्कार उपरोक्त लेखक-कुंड में सम्पन्न हुए उससे कई गुना तो उन शिविरों में ही हो गए जिनमें पुस्तकें सजी थीं। संभवत: इस कारण कि मंच पर दक्षिणा अधिक लगती थी एवं बड़े आचार्यों व मठाधीशों के चरण-वंदन से प्राप्त आशीष के बिना वहाँ पग धरना कठिन था। ऐसे अधम व निर्धन कृतिकारों के तारन हेतु वहाँ कई स्वयंसेवक विमोचक-दस्ते चलायमान थे। यद्यपि कुछ बड़े शिविरों में विमोचन-कुंड भी थे, पर नन्हें शिविर भी पुष्प-हार, किंचित मिष्ठान और अनेक चित्र-खींचकों के साथ सम्पूर्ण कर्मकांड युक्त विमोचन की सुविधा उपलब्ध करवा रहे थे। एक अवसर पर तो उत्सुकता-वश झाँकता हुआ मैं भी धरा गया और किसी पुस्तक की एक प्रति हाथों में धरे पंक्तिबद्ध खड़ा मोबाइल-यंत्रों से अपनी छवि खिंचवाता दृष्टिगोचर हुआ।

हे प्रभु, मेले में लेखकों के अनेक सम्प्रदाय उपस्थित थे, जो किसी एक या अनेक विधाओं में रचना कर्म करते थे। प्रथम दृष्टया तो यही प्रतीत होता था कि वहाँ हर पुरुष व नारी लेखक ही है और अपनी रची किसी पुस्तक के मोक्ष-लाभ हेतु उपस्थित हुआ है। काव्य-सम्प्रदाय में नारियों का वर्चस्व था और उन्हें पुरुष पंडों का स्नेहाशीष प्राप्त था। इन काव्य-कृतियों व उनकी विवेचना में इतनी विकट प्रज्ञा उपलब्ध थी कि उनपर प्रवचन देते पंडितों के सुभाषित मेरे भी पल्ले न पड़े। वैसे यहाँ विमोचन-कर्म का सबसे अहम कर्मकांड सेल्फी-खींचन था। हर व्यक्ति अन्य किसी के साथ खड़ा हो अजीब-सी मुखाकृति बना कर मोबाइल यंत्र में अपनी छवि उतारता भया। स्वयं मेरे साथ भी ये अत्याचार अनेकों बार सम्पन्न हुआ। किसी बड़े आचार्य के दृष्टिगोचर होते ही लोग उन्हें घेर लेते व उनके साथ हर संभव कोण से अपनी छवियाँ उतारने-उतरवाने लगते। आचार्य भी इस फोटो-अर्चना से पर्याप्त प्रसन्न हुए जान पड़ते थे। निश्चय ही फोटो-सेशन नामक कर्मकांड ही पुस्तकों के मोक्ष अनुष्ठान का सबसे उच्च बिन्दु था।

अंत में मैं एक उद्दंड प्रकार के सम्प्रदाय की व्याख्या कर दूँ जिसके बिना रपट अधूरी रहेगी। ये व्यंग्य-विधा में दीक्षित प्राणियों का सम्प्रदाय था जो व्यंग्य के एक विधा होने पर तो आश्वस्त न था पर विवेचन एवं विमोचन में पूर्ण आत्मनिर्भर था। मेले में हर दिन अनेकों गोष्ठियाँ व चौपालें आयोजित कर इन्होंने घनघोर विमर्श के माध्यम से ये सिद्ध करने का प्रयास किया कि उनके सम्प्रदाय में घनघोर ही क़िस्म की अराजकता की स्थिति व्याप्त है। किंतु मुझे तो प्रभु, उनके खिले-खुले मुख और गले-गले मेल-मिलाप के दृश्यों में इस तथ्य के प्रमाण नहीं मिले। संभवत: व्यंग्य विधा की यही विशेषता है अथवा ये महाकुम्भ का पुण्यप्रताप भी हो सकता है।

आपकी लीला से सभी मेलों की तरह ये मेला भी संपन्न हो गया। बिकने से रह गईं पुस्तकें मेले की सुखद यादों के साथ गोदामों में लौट गईं। सभी वरिष्ठ-युवा लेखक, आलोचक, विमोचक भी इसी स्थिति को प्राप्त हुए अर्थात् महत्ता की मरीचिका से निकल कर यथार्थ की भूमि पर आ गए। हे प्रभु, आपने संसार की रचना एक मेले की भाँति ही की है। जिस प्रकार प्राणी मेला समाप्त होने पर या तो मोक्ष पा लेते हैं या अगले मेले में पुनर्जन्म की तैयारी करते हैं, ये पुस्तक मेला भी पुस्तकों और उनके रचयिताओं का वैसा ही जीवन-चक्र प्रतीत होता है। इति नारदीय रपटम!

***

लघु कथा

रसायन

डॉ. विनोद नायक

बारिश थम गई। घोंसले से चिड़िया निकली। तीनों बच्चों ने बाय - बाय किया और कहा - ''माँ जल्दी आना।''

चिड़िया भरोसा दे कर उड़ गई। एक बच्चे ने दूसरे बच्चे से कहा - ''हमें बारिश से बचाने के कारण माँ के पूरे पंख भीग गए पर हमें एक बूँद पानी ना लगने दिया।''

तीसरे बच्चे ने कहा - ''हाँ, माँ के पंख फैलाने पर ही मैं ठण्डी हवा व बारिश से बच पाया।''

दूसरे बच्चे ने कहा - ''ये सब तो ठीक है लेकिन माँ, गीले पंखों से ठीक से उड़ भी पा रही होगी या नही।''

दूसरे बच्चे के कहते ही तीनों ने घोंसले से झाँका, मौसम सुहाना लगा लेकिन माँ ने सख्त हिदायत दी थी कि -''घोंसले से बाहर कतई न निकलना, अभी तुम्हें उड़ना भी कहाँ आता है ?''

चिड़िया ने हरे ताज़े दाने की खोज में उड़ान भरी। मक्के के खेत से कुछ दाने चुनकर, बच्चों के पास लौटी। बच्चों ने हरे हरे ताज़े दाने खाए और सो गए।

चिड़िया थक गई थी। पास में लगे पेड़ से कुछ जामुन खाए और शाम को घोंसले में लौटी। तीनों बच्चे अभी भी सोए हुए थे।

उसे समझ में नही आ रहा था कि - ऐसा कौन -सा रसायन किसान ने मक्का पर छिड़का जिससे मेरे बच्चे दुनिया देखे बिना ही ज़िंदगी भर के लिए सो गए।

***

संपर्क: 77B, श्री हनुमान मंदिर, पानी की टंकी के पास, खरबी रोड, शक्तिमातानगर, नागपुर, महाराष्ट्र 440024 (भारत)
ई-मेल: vinodnayak506@gmail.com

एक सुनियोजित व सुरक्षित शहर – कोपनहेगन

अर्चना पैन्यूली

उत्तरी यूरोपीय, स्केन्डिनेवियन देश डेनमार्क की राजधानी कोपनहेगन में दिसम्बर 2009 में जलवायु परिवर्तन पर दुनिया का सबसे बड़ा सम्मेलन – कोप 15 हुआ था। कई देशों के पदाधिकारी, वैज्ञानिक, एनजीओ व विद्यार्थी यहाँ पहुँचे थे। इकरारनामे हुए, सन्धियाँ हुई। विरोध के भी प्रदर्शन हुए, मोर्चे निकले, पथराव हुए, लोग गिरफ्तार हुए, और कोपनहेगन एक तरह से विश्व में प्रसिद्ध हो गया। कोप 15 से पहले इस देश की चर्चा दुनिया में तब हुई थी जब एक डेनिश कलाकार ने प्रोफेट मोहम्मद के कुछ हास्यकर कार्टून एक अखबार में छपवा दिए थे। आइए, इस नगर की भौगोलिक, ऐतिहासिक व समाजिक ढर्रे से रू-ब-रू होते हैं।

डेनमार्क को स्केन्डिनेवियन देशों का हृदय कहा जाता है। यह देश एक प्रायद्वीप (जटलैंड) के अलावा छोटे-बड़े 406 छितरे हुए द्वीपों से बना है। अस्सी द्वीपों में लोग बसे हैं। बाकी द्वीप वीरान हैं। राजधानी कोपनहेगन प्रमुख द्वीप सीलैंड पर बसी है। यह देश इतना नन्हा है कि कोपनहेगन ही पूरे देश का वजूद लगता है। जनसंख्या का हर चौथा जना यहाँ कोपनहेगन में बसा है। कोपनहेगन का वर्णन करने का मतलब कि पूरे देश का वर्णन करना। सीलैंड द्वीप के अलावा फ्यून, बोर्नहोल्म, अमेजर व मोएन्स इसके प्रचलित द्वीप हैं – कुछ विशाल सागर की अनन्ता से घिरे है तो कुछ चौड़ी-संकरी समुद्री खाड़ी से। द्वीपों को परस्पर जोड़ने के लिए छोटे-बड़े पुल निर्मित हैं और यातायात के लिए जलयानों की भी समुचित व्यस्थता है।

इसका जटलैण्ड प्रायद्वीप ही एक हिस्से से धरती से जुड़ा है, जहाँ यह जर्मनी के साथ अपनी देशीय सीमा बनाता है। दो अन्य स्केन्डिनेवियन देश, नार्वे व स्वीडन कोपनहेगन के उत्तर में स्थित हैं व उससे बहुत अधिक दूर नहीं है। स्वीडन तो इतना नज़दीक है कि कोपनहेगन से उसकी सीमाएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और एक बिन्दू पर निकटम दूरी इनके बीच सिर्फ पाँच किमी रह जाती है। कोपनहेगन स्वीडन के शहर माल्मो से एक अनूठे पुल – ओरेसुंद ब्रिज से जुड़ा है। एक समुद्रवर्ती देश होने के नाते डेनमार्क में कोई भी स्थान समुद्र से एक घंटे की कार ड्राइव से अधिक नहीं है और लोग तरंगे भरते हुए समुद्र से कुछ ही कोसों की दूरी पर बसे हैं।

यद्यपि डेनमार्क एक पुराना देश है मगर दुनिया का ध्यान सहस्त्राब्दि पहले इसकी तरफ

संपर्क:
ई-मेल: apainuly@gmail.com
मोबाइल : + 4571334214

पहली बार तब गया जब डेनिश वाइकिंग राजा समुद्र में उतरे और यूरोप के लंबे भू-भाग पर कब्जा करते चले गए। तबसे यहाँ बहुत कुछ बदल गया है। आज डेनमार्क सभ्य समाज का प्रतीक माना जाता है, जो अपनी प्रगतिशील नीतियों व उदार समाजिक कल्याण पद्धति के लिए प्रचलित हैं। यह राष्ट्र मध्यकालीन गिरजाघरों, संजीवन दुर्ग व गढ़ों एवं अठाहरवीं सदी के गाँवों से भरा-पूरा है। यहाँ के ऐतिहासिक खज़ाने में दो हज़ार पुरानी बॉग लोगों के परिरक्षित शरीर, प्रभावशाली वाइकिंग अवशेष आदि शामिल है। दुग्ध पदार्थों का यह उत्पातक माना जाता है। डेनिश नमूनों व प्रतिमानों ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति हासिल की है, विशेषकर चाँदी, काँच, मृत्तिका-शिल्प, फर्नीचर, बिजली, वास्तुकला व भीतरी सज्जा के क्षेत्र में। सूवरी मीट के आलावा यह औषधीय, फार्मास्यूरटिकल वस्तुएँ तथा विद्युत उत्पातदन मशीनरी का भी निर्यात करता है।

कोपनहेगन में गाँवों की निस्तब्धता व महानगरों की आधुनिकता का अनुठा संगम देखने को मिलता है। छोटी-छोटी नदियाँ, झीलें व धाराएँ यहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य को बढ़ाती हैं। तरह-तरह के उपवन, वाटिकाएँ, फुव्वारों व हरे मैदानों से लैस यह शहर पथिकों को एक निरीह स्तब्धता व कोमल हरियाली का आभास करवाता है।

शहर का विन्यास ऐसा है कि मुख्य रेलवे स्टेशन - सेन्ट्रल स्टेशन से पश्चिम में प्रमुख होटलों की कतार लगी है और पूर्व में शहर का प्रसिद्ध मनोरंजन पार्क टीवोली स्थित है। टीवोली के सामने सेन्ट्रल सिटी स्क्वेयर- रॉडहुसप्लेडसन है, जो नगरीय बसों का मुख्य बस टर्मिनल होने के अलावा शहर का हृदय है। पाँच विभिन्न सड़कों के जाल से निर्मित व भिन्न-भिन्न आकर्षित दुकानों व रेस्टोरेन्ट से सुसज्जित दुनिया की सबसे लंबी पेडस्ट्रीयन स्ट्रीट रॉडहुसप्लेडसन से गुज़रते हुए दूसरे छोर कोंगस-नीटॉर्व स्क्वेयर पर स्थगित होती है। कोंगस-नीटॉर्व स्क्वेयर शहर का एक अन्य केन्द्रिय स्थल है, जो महाराजाओं द्वारा निर्मित प्राचीन भवनों से घिरा है। यहीं से न्यूहाउन केनाल का एक सिरा आरंभ होता है जो केनाल टूर द्वारा पर्यटकों को कोपनहेगन

के प्रमुख दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करवाता है - क्रोन्सबोर्ग स्लोट, पार्लियामेंट, लिटिल मरमेड... आदि।

खैर किसी शहर को समझने का तात्पर्य वहॉ की इमारते व स्थलों को जानना नहीं, बल्कि वहॉ के लोगों को जानना है। वे क्या सोचते हैं, उनके जीवन का स्पन्दन कैसा है। यहाँ की राष्ट्रीय भाषा डेनिश है। जर्मन का भी यहाँ प्रभाव है मगर सभी डेन्स अंग्रेज़ी बड़ी सहूलियत से बोल लेते हैं, जिससे परदेशियों व पर्यटकों को यहाँ भाषा समस्या नहीं होती। डेनिश, जिन्हें डेन्स पुकारा जाता है, सीधे व सरल, अन्यों की जीवन शैली का आदर करने वाले लोग हैं। उनके सुन्दर घरों को देख कर सुन्दरता के प्रति उनके बोध का आभास होता है। हर सड़क व गली में चाय-कॉफी-बीयर की दुकानों की उपस्थिति इन पेय पदार्थो के प्रति उनकी दिलचस्पी बताती है। वैसे सभी यूरोपीय देशों की संस्कृति खुली व स्वछन्द होती है लेकिन डेन्स अत्यधिक आधुनिक प्रतीत होते हैं। आधुनिकता की सारे मापदण्ड उन्होंने तोड़ दिए हैं। समान लिंगी - होमोसेक्सुअल विवाह मान्य हैं। साथ रहने व सन्तानोत्पत्ति के लिय स्त्री-पुरुष को दाम्पत्य सूत्र में बंधना अनिवार्य नहीं हैं। बिन ब्याही माँओं को कानूनी अधिकार हैं, समाज की मान्यता है। सिंगल मदर काफी अधिक संख्या में हैं।

कोपनहेगन में बहुत सारे इंडियन डायस्पोरा हैं - मराठी एसोसिएसन, तेलगु

एसोसिएशन, बंगाली एसोसिएसन आदि। इतने नन्हें से देश में भारतीयों के इतने सारे समूह... भारत के अलग-अलग प्रान्त की परम्परा का यहाँ डंका बज रहा है। कहीं उगादी हो रही है, कहीं पोंगल, कहीं गणेश चतुर्थी का आयोजन तो कहीं माँ दुर्गा के नवरात्रे मनाए जा रहे हैं।

भारत की अनेकों आध्यात्मिक संस्थाएँ यहाँ मौजूद हैं, और गोरे डेनिश भारतीय गुरुओं के अनुयाई हैं। वैसे डेन्स बहुत अधिक धार्मिक नहीं होते, चर्च वगैरह कम ही जाते हैं। मगर इस छोटे से देश में चलती तमाम आध्यात्मिक संस्थाएँ अवगत करवाती कि वे बिल्कुल नास्तिक भी नहीं है। आश्चर्य की बात यह है कि अधिकतर आध्यात्मिक संस्थाएँ भारतीय प्रभाव की थी। सभी कुछ यहाँ 'इयू' व 'यूरो' प्रतिध्वनित हो रहा है तो ये भारतीय गुरु यहाँ क्या कर रहे हैं? उनकी ज़िंदगी में नि:सन्देह कुछ कमी है। फैमिली बोन्ड कम होते हैं। तलाक की दर बहुत अधिक है। शादियाँ कम होती हैं। कुछ ही युग्ल हैं जो ताउम्र साथ रह पाते हैं। बहुत कम बच्चे हैं जिनके असली पिता उन्हें पाल रहे हैं। सरकार ने उनके अधिकारों को सुरक्षित तो किया है मगर व्यावहारिक ज़िंदगी कानूनी नियमों परे हट कर समाजिक प्रथाओं व दस्तूरों से घिरी रहती है। योगी व सन्यासियों की भूमि होने के कारण भारत पश्चिमी देशों में एक सामान्य चाह रही है कि वह उन्हें अध्यात्मिकता की सैर करवाए।

यहाँ की आबादी लगभग 5.8 मीलियन है, जिनमें से डेढ़ मीलियन के करीब कोपनहेगन में बसी है। तीन मीलियन काम करने वाले नागरिक है, बाकी बच्चे और बूढ़े हैं। काम करने वालों में आधे पुरुष हैं तो आधी महिलाएँ। कहा जाता है कि सत्तर के दशक में कोपनहेगन की डेनिश महिलाओं ने ज़बरदस्त मोर्चा निकाला था। घरों को छोड़कर वे सड़कों व पार्क में जम गई थी कि उन्हें पुरुषों की तरह समान अधिकार चाहिए। घर, स्कूल, विश्वविद्यालय, संस्थान, नौकरी, रोज़गार व वेतन आदि में उनके व पुरुषों के बीच ज़रा भी भेद-भाव नहीं बरता जाए। उस क्रान्ति की वजह से आज डेनिश महिलाओं के अधिकार इस कदर सुरक्षित हैं कि घर व बाहर के कार्यों में

उनमें व पुरुषों में ज़रा सा भी लिंगभेद नहीं दिखता। घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारी में पुरुषों व महिलाओं के बीच बराबरी की भागीदारी रहती है। शिशुओं की देखभाल के लिए उनके जन्म से ही सरकारी संस्थानों की समुचित व्यस्थता है। गर्भवती महिलाओं को एक वर्ष का प्रसवाकाश प्राप्त है। शिशुओं व बच्चों की देखभाल के लिए सरकारी डे-केयर हैं। इन संस्थानों के कर्मचारी प्रशिक्षित होते हैं।

यहाँ की छोटी आबादी का लगभग 13 प्रतिशत लोग विदेशी हैं, जिनमें से साढ़े पाँच प्रतिशत इस्लामी देश - पाकिस्तान, टर्की, इराक व सोमालिया से आए रिफ्यूजी हैं और शेष दुनिया के बाकी देशों से। नौकरी व आवास की सुरक्षा की चाहत में आए इन आप्रवासियों ने वैसे तो देश के सभी द्वीपों को आबाद किया है, मगर सत्तर प्रतिशत से अधिक कोपनहेगन में बसे हैं।

ग्लोबललाइजेशन की वजह से मल्टीनेशनल कंपनियों में काम करने के लिए बाहर मुल्कों से आने वाले लोगों का आगमन निरंतर बढ़ रहा है। इसलिए कोपनहेगन अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की एक विविधता को लिए हुए है। इसकी खूबी यह है कि दुनिया की लगभग 50-60 राष्ट्रीयताओं के लोग यहाँ रहते हैं, यानि दुनिया की हर संस्कृति का आदमी यहाँ मिल सकता है।

मगर सच्चाई यह भी है कि अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में यहाँ अप्रवासियों का प्रतिशत कम समझा जाता है। मगर इस नगर को जीवतंता उपलब्ध करवाने में उनका योगदान नब्बे प्रतिशत से ऊपर है। सारे पिज़ेरिया और पीज़ा-हट यहाँ इमीग्रेन्टस ही चलाते हैं। कइयों ने एथनिक रेस्टोरन्ट खोले हैं। वे कम दाम में लोगों को बढ़िया सुविधा उपलब्ध करवाते हैं। ईद हो या क्रिसमिस, उनके लिए सभी दिन बराबर हैं।

डेनमार्क में समाजवाद बहुत तगड़ा है। यहाँ के नागरिकों का जीवन स्तर बेहतर है। कुछ हिन्दुस्तानी यहाँ आकर टिप्पणी करते हैं कि यहाँ 'रामराज्य' है। स्कूल, कॉलेज व अस्पताल, सब निशुल्क। मगर यहाँ की सरकार नागरिकों की आय का एक बड़ा प्रतिशत इन्कमटेक्स के रूप में वसूल करके अपने समाज कल्याण कोषों को भरे रहती

है। वे लोगों को न अमीर बनने देती है और न ही गरीब। इस वजह से यहाँ रईसों व गरीबों में भेद बहुत थोड़ा है। समाजिक परिवेश सभी का एक जैसा है और आर्थिक स्थिति भी सभी की लगभग एक सी ही दिखती है। एक कड़वा सच यह है कि इमीग्रेन्टस ने यहाँ की सुविधाओं का बहुत अधिक दुरुपयोग भी किया है, जिस वजह से यह देश अब अप्रवासी विरोधी बनता जा रहा रहा है। अप्रवासियों, विशेष कर मुसलिम अप्रवासियों पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि वे इस देश के लोगों से घुलते-मिलते नहीं है। सम्पूर्ण यूरोपियन संघ में आज अप्रवासियों के लिए सबसे कड़े नियम डेनमार्क के बन गए हैं।

जनसंख्या कम होने की वजह से यहाँ की खुली व चौड़ी सड़कें खाली सी लगती है। प्रत्येक चौराहे पर सिगनल लाइट्स की समुचित व्यवस्था है। सड़कों के दोनों तरफ साइकिल-पथ, फुटपाथ बने हैं, जिससे ट्रैफिक और भी नियत्रिंत रहता है। ट्रैफिक नियमों का यहाँ कोई उल्लंघन नहीं करता, बल्कि यहाँ नागरिक ट्रैफिक नियमों का इतना निष्ठापूर्वक पालन करते हैं कि रात दो बजे वीरान पड़ी सड़कों को वे लाल सिगनल पर कभी पार नहीं करतें। वे हरी बत्ती होने की प्रतीक्षा करते हैं। बहुत सारी क्रोसिंग पर, जहाँ सिगनल नहीं हैं, पदयात्रियों को सड़क पार करने की प्राथमिकता दी जाती है। पदयात्रियों को देख कार या बस वाले को ठहरना पड़ता है।

कानून का पालन यहाँ अक्षरश: होता है। इस देश की स्वच्छता देखते ही बनती है।

कोपनहेगन यदि कोई आएगा तो पहली ही नज़र में उसे यह साईकिल चलाने वालों का शहर लगेगा। यहाँ बच्चे, जवान व बूढ़े सभी साईकिल पर नज़र आएँगे। यहाँ तक परिवार, पति-पत्नी व बच्चों सहित साइकिलों पर सवार मिलेगें। साइकिल चलाने वालों को यहाँ बहुत पसन्द किया जाता है और सड़कों पर कई स्थानों पर उन्हें प्राथमिकताएँ है। आलम यह है कि साइकिल वाला गाड़ी देख कर नहीं, बल्कि कार वाला साइकिल देख कर चलता है कि कहीं वह उसके मार्ग में कोई रुकावट तो नहीं डाल रहा। इस वजह से यहाँ लोगों के लिए ड्राइंविंग टेस्ट भी पास करना मुश्किल होता है। अधिक से अधिक नागरिकों को साइकिल चलाने के लिए प्रेरित करने के लिए सरकार अधिक साइकिल लेन्स व रूट्स का निर्माण कर रही है। डेन्स बड़े फिगर कॉन्शियस होते हैं। जिम, जॉगिंग बहुत करते हैं। किसी भी पहर बाहर निकल जाओ लोग जॉगिंग करते हुए दिख जाएँगे। योगा का भी यहाँ प्रभाव बहुत बढ़ रहा है।

जैसा सभी यूरोपीय देशों का हाल है कि वर्ष के नौ महीने, सितम्बर से मई तक ये शीत के आगोश में रहते हैं। ठंड व कोहरा बना रहता है। गर्मियों के आने पर यहाँ छटा निराली हो जाती है। सूरज आकाश से विलुप्त होता ही नहीं। पेड़-पौधे हरे व रंग-बिरंगे हो जाते हैं। पार्क व समुद्रतटों पर लोगों की पिकनिक शुरू हो जाती है। इस मौसम में अगर पार्क व समुद्रतट जाओ तो वहाँ तमाम गोरांग निवस्त्र लेटे हुए दिखेगें। इन्हीं गर्मियों के दिनों में कोपनहेगन शहर के एक विस्तृत पार्क में सुप्रचलित मैला, कार्निवाल लगता है। सारा कोपनहेगन वहाँ जुट जाता है। फूड-स्टॉल, झूलें, सर्कस, संगीत व नृत्य शालाओं से पार्क सज जाता है। कलाकार युवतियाँ उत्तेजक परिधानों में मादक नृत्य प्रस्तुत कर जनसमूह को उन्मादित करते हैं। कुल मिलाकर कोपनहेगन एक सुनियोजित, सुरक्षित व शांतिमय शहर है, साथ ही आधुनिक नगरों के सभी मानदण्डों से परिपूर्ण। अगर यहाँ विश्रान्ति है तो उत्तेजना भी है।

***

तुम्हारा शिष्य, हमारे पाले में आ गया है!

ज़हीर कुरेशी

संपर्क: 108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने, गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ, भोपाल-462001 (म.प्र.)
मोबाइल : 09425790565
फोन: 0755-2740081
ई-मेल: poetzaheerqureshi@gmail.com

अब तो छंद-मुक्त और मुक्त-छंद कविता के सुपरिचित कवि पवन करण भी 51 वर्ष आयु की सीमा-रेखा पार कर चुके हैं। मेरे ख़याल से वर्ष 1982 में पवन यही कोई अठारह साल के रहे होंगे। आकण्ठ किसी के प्यार में डूबे हुए। बाद की अपनी 'किस तरह मिलूँ तुम्हें' कविता की तरह अनेक कामनाएँ पाले हुए। 1982 में पवन करण ने अपनी रूमानी भावनाओं को कविता के रूप में आकार देना शुरू कर दिया था। लेकिन, उस समय उनकी कविता का फॉर्म था ग़ज़ल। रूमानी ग़ज़लें कहते थे। ग़ज़ल कहने का उनका कवि-कर्म संभवत: 1986 तक चला।

1986 तक दिल्ली के अलग-अलग प्रकाशनों से मेरे तीन ग़ज़ल-संग्रह प्रकाश में आ चुके थे। देश की यशस्वी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी निरंतर मेरी ग़ज़लें और गीत प्रकाशित हो रहे थे। ग्वालियर में आ कर अच्छी तरह व्यवस्थित हुए भी मुझे सोलह साल हो चुके थे।

उस समय, युवा वर्ग में कोई भी नौजवान अगर ग़ज़ल या गीत लिखने की कोशिश करता था तो अपनी कविताएँ मुझे ज़रूर सुनाना या दिखाना चाहता था। उन दिनों मोबाइल जैसी सुविधाएँ तो थीं नहीं। लैण्ड लाइन टेलीफोन भी गिने-चुने लोगों के यहाँ हुआ करता था। इसलिए 'समीर कॉटेज' में रविवार के दिन अनिमंत्रित युवा कवियों की एक प्रकार से भीड़ रहती थी। दोपहर 3.00 बजे के बाद प्राय: कवि जुटना आरंभ होते थे। उनके बैठने, विमर्श और कविता-पाठ का यह साप्ताहिक कार्यक्रम कभी-कभी तो शाम 7.00 बजे तक भी चल जाता था। पत्नी चाय बना-बना कर परेशान थी और बच्चे (बेटा समीर और बेटी

तबस्सुम) चाय-पानी 'सर्व' कर-कर के। लेकिन, समीर कॉटेज में बरसों तक यह कार्यक्रम अविश्राँत चलता रहा।

.... तो मैं बता रहा था कि जवान होते ही पवन करण ने रूमानी कविता लिखना शुरू कर दिया था और वह भी पारंपरिक ग़ज़ल के फॉर्म में। उन्हीं दिनों, पवन की कुछेक रोमाँटिक ग़ज़लें पूरी साज-सज्जा के साथ दिल्ली प्रेस की पत्रिकाओं ('सरिता' और 'मुक्ता') में छप भी गई थीं- जिनकी मुझे ख़बर थी। उस समय का ग्वालियर कोई बहुत बड़ा शहर तो था नहीं। हम लोग मज़ाक में अपने शहर को महाग्राम भी कहा करते थे।

कविता प्रकाशन से कवि गोष्ठी.... कवि-सम्मेलन तक की कोई भी स्थानीय गतिविधि 'माउथ टु माउथ' प्रचार माध्यम द्वारा कमोवेश 200 स्थानीय साहित्यकारों तक पहुँच ही जाती थी। पवन करण किसी इतवार को समीर कॉटेज में हाज़िर हुए। जहाँ पहले से ही 7-8 युवा कवि जमे हुए थे। बैठक में घुसने के तुरंत बाद पवन ने मेरे पैर हुए। मैंने उसे किसी गोष्ठी में देखा था। हम लोग रू-ब-रू अब हो रहे थे। पहले से विराजे हुए किसी युवा कवि ने मुझे बताया- 'ये पवन करण हैं। स्वास्थ्य विभाग में नौकरी करते हैं। अभी इनकी एक धाँसू ग़ज़ल 'मुक्ता' में छपी हैं!'

पवन करण ने 'मुक्ता' का वह ताज़ा अंक मेरे हाथ में दिया। मैंने प्रशंसात्मक निगाहों से पत्रिका का वह अंक उलटा-पलटा और 'अभी देखते हैं' कह कर पवन को लौटा दिया। इतनी गतिविधि के बाद, युवा मित्रों की गोष्ठी फिर वहीं आ गई, जहाँ वो पहले से थी।

हम लोग साढ़े पाँच बजे तक बैठे रहे, लेकिन, उस दिन पवन करण की कविताई का नम्बर नहीं आ पाया। बैठक बरखास्त होने के बाद भी पवन बैठे रहे। सब मित्रों के जाने के बाद मैंने पवन की ओर प्रश्नवाचक निगाहों से देखा। पवन ने कहा- 'मैं ग़ज़ल लिखना चाहता हूँ।'

मैंने कहा- 'लिख तो रहे हो! अभी तक कहाँ-कहाँ प्रकाशित हुए?'

''मुक्ता' के अलावा 'सरिता' में भी।'

मैंने कहा- 'ऐसा करो, कल आ कर तुम 'सरिता'-'मुक्ता' के वे अंक मुझे दे जाओ,

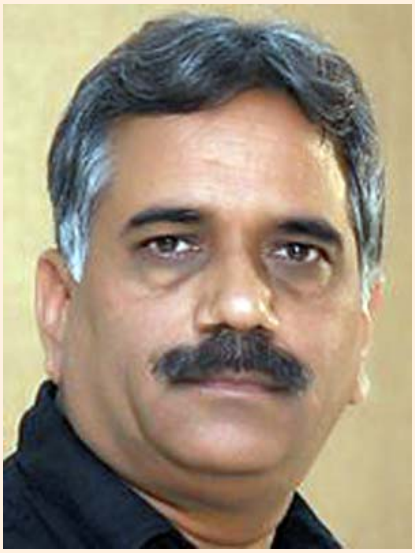

जिनमें तुम्हारी ग़ज़लें छपी हैं। मैं उन्हें पढ़ लूँगा। फिर तुम 5-6 दिन बाद आने वाले सेकण्ड सेटरडे को आ जाना। उस दिन कोई नहीं आता। तब तुम्हारी ग़ज़लों पर बात करेंगे।'

पुन: पैर छू कर पवन चले गए और अगले दिन 'सरिता'-'मुक्ता' की प्रतियाँ भी दे गए।

द्वितीय शनिवार की मेरी और पवन दोनों की छुट्टी थी। पवन शायद 3.30 बजे आए। पहले चाय पी गई, फिर ग़ज़लों पर बात।

मैंने बात शुरू करते हुए पवन से कहा- 'तुम्हारी ग़ज़लों का कथ्य वही है, जो तुम्हारी उम्र है। रूमान हमारी ज़िंदगी का सबसे ख़ूबसूरत पक्ष है। अगर इस उम्र में कोई कवि संन्यास की बातें करता है, तो मेरे हिसाब से कहीं विचलन है। ... जहाँ तक फन्नी एतबार से तुम्हारी ग़ज़लों को परखने का प्रश्न है तो उनमें बहुत ख़ामियाँ हैं। वज़्न और बहर के अलावा भी उनमें तरह-तरह के दोष हैं।'

पवन ने प्रतिवाद-सा किया, 'तो 'सरिता'-'मुक्ता' वाले इन ग़ज़लों को कैसे छाप देते हैं?'

मैंने कहा- 'इसलिए, क्योंकि वे भी ग़ज़ल का ए, बी, सी, डी नहीं जानते। उन्हें तो साज-सज्जा के साथ रूमान को परोसना भर है।'

पवन बोले- 'तो भाई साहब, मैं ग़ज़ल के व्याकरण को सीख लूँगा। मैं आपके पास इसलिए आया हूँ। मैं ग़ज़ल ही लिखना चाहता हूँ।'

'मैं तुमसे यह कब कह रहा हूँ कि ग़ज़ल मत लिखो। ग़ज़ल लिखो, लेकिन, साफ-सुथरी.... हर नज़रिए से चाक-चौबंद।'

पवन ने पूछा- 'तो भाई साहब, मैं क्या करूँ?'

मैंने कहा- 'कुछ नहीं। अभी तो तुम रविवार को जमने वाली इस विमर्श-गोष्ठी में आते रहो। जब मैं या कोई अन्य कवि शेर सुनाए तो उन्हें आत्म-सात् करो।'

और यह क्रम चल निकला। 'समीर कॉटेज' की रविवारीय गोष्ठियों में पवन करण बिला नाग़ा आते रहे। गोष्ठी में एकाधिक बार उन्होंने अपनी ग़ज़लें भी पेश कीं।

तब तक, पवन की सरलता के कारण मेरा भी उनसे लगाव हो रहा था। लगभग छ: महीने बाद, आगामी सेकण्ड सेटरडे की तारीख देख कर मैंने कहा- 'पवन, सेकण्ड सेटरडे को आओ। अपनी ग़ज़लों की डायरी के अलावा, तुमने जो कुछ भी अब तक लिखा है... कहानी, गीत, दोहा, छन्द मुक्त या मुक्त छंद कविता... कुछ भी... उसे भी ले कर आओ।'

हस्बे-मामूल, पवन करण द्वितीय शनिवार को तीन बजे तक समीर कॉटेज पधार गए।

मैंने कहा- 'पवन, वज़्न और बहर के मैंने तुम्हें जो टिप्स दिए थे, पहले वे सब ग़ज़लें सुनाओ।'

संबद्ध ग़ज़लें सुनाई गईं। फिर कुछ ताज़ा ग़ज़लें सुनाईं।

मैंने कहा- 'बात बन नहीं रही। अभी तो तुम वज़्न और बहर में लगातार चूक कर रहे हो। फिर ग़ज़ल का मेनरिज़्म.... ग़ज़ल की बारीकियाँ समझाने का क्या लाभ?'

तभी बैठक में चाय आ गई। हम लोग चुपचाप चाय पीते रहे। चाय का घूँट भरते हुए मैंने पवन से पूछा- 'तुमने ग़ज़लों के अलावा, कविता के किसी अन्य फॉर्म में कभी कुछ लिखा है?'

कुछ सोचते हुए पवन करण बोले, 'हाँ, छोटी-छोटी लाइनों में लिखी जाने वाली एक कविता लिखी थी- जब पापा को जे.सी. मिल से निकाला गया था।'

मैंने पूछा- 'वो कविता तुम्हारे पास है अभी?'

बुझे स्वर में पवन बोले, 'ढूँढ़ता हूँ

रजिस्टर में।' फिर हस्तलिखित रजिस्टर के पन्ने उलट-पुलट कर पवन ने वह अतुकान्त कविता ढूँढ़ ली।

युवा आक्रोश में पगी उस अनगढ़ कविता में व्यथा थी परिवार की धुरी पिता को जे.सी. मिल से निकाले जाने की। हाँ, मिल से निकाले जाने के बाद, परिवार की करुण स्थिति की पड़ताल कविता में नहीं की गई थी।

कविता समाप्त होने के बाद, मैंने ताली बजाई और कहा- 'बहुत अच्छी कविता है यह। बीते सात महीनों में पहली बार तुमने कोई उल्लेखनीय कविता सुनाई है।'

अपनी कबाड़ में पड़ी हुई कविता की इतनी तारीफ़ सुन कर पवन करण भौंचक थे, बोले, 'लेकिन, भाई साहब, मैं तो ग़ज़ल लिखना चाहता हूँ!'

मैंने कहा- 'न ग़ज़ल-गीत लिखना बेहतर है, न छंद-मुक्त कविता कमतर। कविता के जिस फॉर्म में हम अपनी पूरी संवेदना के साथ अपनी पूरी बात को कह पाएँ, वही फॉर्म हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ है। समकालीन कविता में मुझे तुम्हारा भविष्य दिखाई दे रहा है!'

यह कह कर मैं उठा और पुस्तकों की अलमारी से मैंने लीलाधर जगूड़ी का कविता-संग्रह निकाला- 'रात अब भी मौजूद है।'

पुस्तक को उलट-पुलट कर पवन करण ने कहा- 'ऐसी कविताएँ तो मैं दिन में दस लिख लूँ!'

मैंने कहा- 'नहीं लिख पाओगे। कहना सरल है, करना कठिन। नौ दिन बाद, इतवार को छोड़ कर अमुक छुट्टी पड़ रही है, तुम उस दिन आओ। केंचुआ छंद में दस कविताएँ लिख कर भी लाना!'

इस प्रकार, मैं और पवन रविवार के अलावा पड़ने वाली किसी अन्य छुट्टी के एकान्त में मिलने लगे।

लीलाधर जगूड़ी की पुस्तक लौटाने के बाद एक-एक करके मैंने पवन को राजेश जोशी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मंगलेश डबराल के कविता-संग्रह पढ़ने को दिए। कविता-संग्रह लौटते जाते थे, मैं उन्हें समकालीन कविता का अगला संग्रह थमा देता था।

समकालीन कविता में पवन करण को मज़ा आने लगा था। उनकी ग़ज़ल की लत छूट रही थी। वे हर मीटिंग में अपनी 2-3 ताज़ा छंद-मुक्त कविताएँ सुनाते रहते थे।

पवन में प्रतिभा तो थी। लेकिन, उसका सदुपयोग नहीं हो पा रहा था। उनकी छंद-मुक्त और मुक्त छंद कविताओं में सुधार के लिए मैं समुचित सलाह भी देता रहता था। सलाह के बाद, किए संशोधनों से कई बार कविता बहुत सुन्दर बन जाती थी। मैं पवन को यह भी बताता रहता था कि कविता के विषय कैसे चुने जाएँ.... कौन से चुने जाएँ। छोटे-छोटे ज़मीनी विषयों पर बड़ी कविता कैसे लिखी जा सकती है।'

उस समय तो पवन करण ने समकालीन कविता पर दी गई मेरी हर सलाह को माना। मैंने कहा कि यह कविता अमुक पत्रिका में भेज दो तो भेज दी। शीघ्र ही, ग्वालियर के अज्ञात पवन करण की कविताएँ देश की यशस्वी पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं।

उन दिनों, मैं ग्वालियर इकाई में जनवादी लेखक संघ का सचिव था। पवन ने पूछा, 'भाई साहब, मैं जलेस का सदस्य बन जाऊँ?'

मैंने कहा, 'नहीं! तुम जलेस के नहीं, प्रलेस के सदस्य बनो। प्रगतिशील लेखक संघ, ग्वालियर में प्रकाश दीक्षित, डॉ. जगदीश सलिल, महेश कटारे, ओम प्रकाश शर्मा आदि अनेक साहित्यकार हैं- जो छन्द मुक्त कविता में तुम्हें आगे बढ़ा सकते हैं!'

मेरी बात सुन कर पवन करण एक बार फिर निराश हुए। फिर भी, उन्होंने मेरी बात मानी और प्रगतिशील लेखक संघ की सदस्यता ले ली।

उनकी कविताएँ देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगातार आ रही थीं। प्रलेस में जाने के बाद भी, उनका मुझसे मिलना, अपनी कविताओं पर सलाह-मशविरा करना बदस्तूर जारी था।

एक दिन, कला-वीथिका में होने वाली कथा-गोष्ठी में बतौर श्रोता शामिल होने के लिए जब मैं पहुँचा तो कथाकार महेश कटारे ने ज़ोर से नमस्कार की और लगभग उसी स्वर में कहा- 'तुम्हारा शिष्य, हमारे पाले में आ गया है!'

मैंने भी हँसते हुए उत्तर दिया- 'दल-बदल तो चलता रहता है, सर!'

***

लघु कथा

व्हेन करैक्टर इज लॉस्ट

सुभाष चंद्र लखेड़ा

दो वर्ष पुरानी बात है। दिल्ली के कनॉट प्लेस में उस दोपहरी पैंसठ वर्षीय सुरेश बाबू किसी काम से पहुँचे तो उन्हें रीगल सिनेमा के पास अपने हमउम्र मित्र तेजेन्द्र जी नज़र आए। वे उनसे चंद कदम आगे किसी महिला के साथ जा रहे थे। सुरेश बाबू तेजेन्द्र जी की पत्नी से भलीभांति परिचित थे, लेकिन वह महिला कोई और थी। सुरेश बाबू को यह देख आश्चर्य हुआ कि तेजेन्द्र जी का बायाँ हाथ उस महिला के कंधे पर था और देखते - देखते वे उस महिला की कमर को अपनी गिरफ्त में ले चुके थे। अब वे दोनों सिनेमा हॉल में दाखिल हुए। कौतुहल वश सुरेश जी भी कुछ देर बाद सिनेमा हाल में घुसे और टिकट लेकर फिर अंदर पहुँच गए। अंदर अँधेरा था और फ़िल्म शुरू हो चुकी थी। इंटरवल तक सुरेश जी बेचैन रहे। इंटरवल होते ही उनकी निगाहें उन दोनों को खोजने लगी। आख़िर, उन्हें वे नज़र आ गए। तेजेन्द्र जी अब उस प्रौढ़ा के बालों को सहला रहे थे। सुरेश जी सारा माजरा समझ चुके थे।

फ़िल्म ख़त्म होते ही सुरेश जी तुरंत बाहर आए और अपने घर के लिए रवाना हो गए। कुछ दिन बाद वे शाम को तेजेंद्र जी के घर पहुँचे। तेजेन्द्र जी और उनकी पत्नी घर पर ही मौजूद थे। चाय पीने के दौरान समाज के चारित्रिक पतन पर चर्चा चली तो तेजेन्द्र जी तपाक से बोले, ''व्हेन करैक्टर इज लॉस्ट, आल इज लॉस्ट।''

***

संपर्क: सी-180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर-7, प्लाट नंबर-17, द्वारका, नई दिल्ली -75
ई-मेल: subhash.surendra@gmail.com

दो बहनों की कथा
(एक पत्रिका के दो नाम : शमा-सुषमा)

डॉ . अफ़रोज़ ताज

(शमा और सुषमा का दिल्ली स्थित कार्यालय)

एक राजा के दो बेटियाँ थीं, शमा और सुषमा। दोनों का रूप रंग एक, चाहत एक, आँगन एक, बाबुल एक, माता एक, भाषा एक, पर लिपियाँ फ़र्क़। बड़ी बेटी शमा की लिपि थी उर्दू और छोटी बेटी की लिपि थी हिन्दी। लोगों ने पूछा, ''एक बाप की दो बेटियाँ, दोनों की भाषाएँ अलग-अलग कैसे?'' दोनों ने प्रेम और सद्भाव से जवाब दिया, ''हमारी लिपियाँ अलग-अलग हैं।'' लोगों ने पूछा, ''पर राजकुमारियों, तुम भाषा तो एक बोल रही हो?'' दोनों लाजवाब रह गईं और एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कुरा दीं। लोगों ने देखा उनकी आँखों में आँसू चमक रहे थे। लेकिन लोगों को जवाब न मिला।

मैं भी कहानी पूरी नहीं कर पाता हूँ। जब भी उन दो बहनों की कथा सुनाता हूँ, लोग सुनते कम सवाल ज़्यादा करते हैं, तब मैं ने सोचा अब कथा लिख कर सुनाऊँगा।

आपने यदि शमा के बारे में न सुना हो तो सुषमा पत्रिका के बारे में अवश्य सुना होगा। एक दौर था ये पत्रिकाएँ शमा (उर्दू) सुषमा (हिन्दी) घर-घर में ख़रीदी जाती थीं। ये लगभग 50, 60, 70 के दशक में अपनी प्रगति की चोटी पर थीं। हर व्यक्ति के हाथ में या उसके सरहाने यह पत्रिका पाई जाती थी। यदि बच्चे के हाथ में आ जाती तुरन्त छीन ली जाती। लेकिन इसे बच्चे भी छुपछुपा कर नज़र बचाकर छत पर या किसी कोने खुदरे में आँख बचा कर ले जाते और बड़े चाव से उसकी कहानियाँ पढ़ते, उसकी तसवीरें निहारते, कुछ हाथ से बने स्कैच तो कुछ फ़ोटो उन्हें बड़े अच्छे लगते। स्कैच चित्रकारों द्वारा कहानी के प्लाट पर बनाए जाते और फ़ोटोग्राफ़ फ़िल्म अभिनेत्रियों अभिनेताओं के होते और नीचे उनके होता एक फड़कता हुआ उर्दू शेर। ये पत्रिकाएँ केवल मर्दों के लिये ही मानी जाती थीं, इसी लिये औरतें ज़्यादा पढ़ती थीं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या था इन पत्रिकाओं में जो हर एक ने इन्हें हाथों हाथ लिया। इनकी ख्याति का कारण क्या रहा? क्यों यह घर-घर में चर्चित थीं या इनकी शौहरत उस दौर की बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं से बढ़कर क्यों थी? क्या था इन शमा-सुषमा में कि इनकी बिक्री के पैसे बोरियों में भर कर रखे जाते थे, जिनके गिनने वालों के हाथ थक जाते थे और उन्हें अन्तराल लेना पड़ता था।

फिर फ़ौरन ही सवाल उठता है कि इसका क्या राज़ था कि जो पत्रिकाएँ उन्नति का शिखर छू चुकी थीं उनका पतन ऐसे कैसे हुआ? कैसे यह शमा एक दम बुझी कि आज की पीढ़ी जिसका नाम तक भी नहीं जानती? उसकी उन्नति या उसके पतन के बहुत से अनुमान लगाए जा सकते हैं परन्तु अस्ल क्या है कौन जाने? मैं काल्पनिक विचार आपके सामने

संपर्क:101 Camille Court, Chapel Hill NC 27516, USA
ईमेल: taj@unc.edu
मोबाइल:919-999-8192

रखूँगा और फ़ैसला आपको करना होगा कि कौन सा कारण सच्चा है या समझ में आता है, जो कारण मुझे सच्चा लगता है मैं उसकी ओर भी इशारा करता जाऊँगा, निर्णय आपका है।

तीसरा सवाल उठता है कि भाषा, साहित्य तथा फ़िल्म अध्ययन के लिये ये पत्रिकाएँ क्यों महत्त्वपूर्ण थीं। इस में कोई शक नहीं है कि इन पत्रिकाओं का महत्त्व भारतीय पत्रिकाओं के इतिहास में सरे फ़हरिस्त ही है। इन्होंने जितनी भाषा, साहित्य तथा फ़िल्म अध्ययन की सेवा की है शायद किसी पत्रिका ने न की हो। इन पत्रिकाओं ने हमेशा विनयपूर्ण रह कर साहित्य के लिये बड़े-बड़े काम किये। दिखावट का रास्ता इन्होंने कभी नहीं अपनाया और एक समय में इनका सर्क्यूलेशन ब्लिट्स और फ़िल्मफ़ेयर से भी ज़्यादा रहा।

इस से पहले मैं इन सारे सवालात पर बात करूँ, क्यों न मैं आपको ग़ालिब का एक शेर सुनाता चलूँ:

दाग़े फ़िराक़े सोहबते शब की जली हुई
इक शमा रह गई है सो वह भी ख़ामोश है

मेरे हाथ में शमा का एक अंक है, जिसमें वह सब मौजूद है जिसके कारण उसको ख्याति मिली, उसका महत्त्व बना और उसका पतन हुआ। वह ख़ामोशी से अपनी दास्तान कह रही है कि मेरे लाखों चाहने वालो ने रातों रात मुझे बिसरा दिया। ऐसा भुलाया कि सीधा मुझे रद्दी में ला बेचा। किसी लाइब्रेरी या संग्रहालय में मुझे कोई स्थान न मिल सका। मुश्किल से भूले बिसरे मैं एक आध लाइब्रेरी में आधी अधूरी पाई गई। और रद्दी में भी कब तक बेची जाती? मेरा काग़ज़ क्षीण और पुराना हो चुका है। अब तो मैं केवल उन हाथों में रह गई जो मेरा महत्त्व समझते हैं और वे कितने हैं, शायद एक या दो।

शमा ख़ामोश है, मैं उसकी ख़ामोश जुबान से दास्तान सुन रहा हूँ। मैं दाग़े फ़िराक़े सोहबते शब की जली के छाले महसूस कर हा हूँ।

1930 से पहले की बात है, दिल्ली में एक महाश्य हुआ करते थे, यूसुफ़ दहलवी,

शमा पत्रिका के संपादक श्री यूसुफ़ देहलवी

जिनके पूर्वज मुल्तान से आए थे, ये लोग शम्सी पंजाबी थे। हाफ़िज़ यूसुफ़ दहलवी सूफ़ी अज़ीज़उर्रहमान पानीपती के शिष्य थे और सूफ़ी अज़ीज़उर्रहमान उनके मुरशिद थे। यह वह दौर था जब यूसुफ़ दहलवी अहाता हबश ख़ाँ दिल्ली में रहते थे। अपने सूफ़ी मुरशिद के कहने पर यूसुफ़ दहलवी साहब ने एक धार्मिक और साहित्यिक पत्रिका शुरू की, जिसका नाम ''शमा'' था। यहीं शमा का जन्म हुआ। शुद्ध धार्मिक और साहित्यिक होने के कारण यह पत्रिका बड़ी मुश्किल से चल पा रही थी। यूसुफ़ दहलवी साहब ने अपने गुरु मुरशिद सूफ़ी अज़ीज़ उर्रहमान पानीपती से पूछा कि शमा चल नहीं पा रही है, इसका क्या इलाज है? गुरुजी पानीपती ने जवाब दिया कि इसमें से धार्मिक रंग निकाल कर थोड़ा ''बाइयोस्कोप'' (फ़िल्म) का मसाला डाल दो और साहित्य भी उसके साथ-साथ रखो। बाद में यही नुसख़ा (फ़ार्मूला) शमा की जीत का कारण हुआ। यह सन् 1939 की बात है। पहला अंक आधा आना (अधन्ना) या दो पैसे का था और बरसों यही मूल्य रहा (जो आज के हिसाब से एक सैण्ट का सौवाँ भाग है)।

दहलवी परिवार का यूँ तो असली व्यापार भूमि निर्माण था। फाटक हबश ख़ाँ में उन्होंने दिलख़ुश बिल्डिंग नीलामी पर ख़रीदी और उसी को अपना घर बनाया। इण्टरव्यू में एक जगह यूसुफ़ दहलवी के बड़े बेटे कहते हैं कि यह वह दौर था जब ज़मीन कपड़े से सस्ती थी। कई दशक तक यह बिल्डिंग शमा दफ़्तर की मुख्य ब्राँच रही।

यूसुफ़ दहलवी के सब से छोटे बेटे ने जो घर बनाया था, शमा वही प्रिन्ट होती थी। भारत में सब से पहली आफ़सैट उर्दू प्रिन्टिंग दहलवी परिवार ने ही शुरू की थी। उस ज़माने में उनके परिवार के वकील आसफ़ अली थे। यह वही आसफ़ अली हैं जो बाद में अरुणा आसफ़ अली के साथ राजनीति में आए तथा जिनके नाम से नई दिल्ली में मशहूर रोड है जो दरियागंज के पास है, और उसी रोड पर 1953 में शमा-सुषमा का बहुत बड़ा दफ़्तर खुला।

उस से पहले 1950 में उन्होंने एक लाल कुआँ का बड़ा दवाख़ाना बन्द होने से बचाया और उसे ख़रीद लिया। शमा लैबोरेट्रीज़ भी चलाई। यह सब कैसे हुआ जबकि वे पत्रिकाओं का व्यापार तथा प्रकाशन उनका धंधा था।

हुआ यूँ कि पिता यूसुफ़ दहलवी की पत्नी एक दम बीमार हो गईं और पता लगा उनको टीबी है। उन्होंने उनका आयुर्वेदिक तथा यूनानी इलाज करवाया जिस से वे ठीक हो गईं। दहलवी परिवार आयुर्वेदिक तथा यूनानी औषधियों से बेहद प्रभावित हुए और उन्होंने शमा-सुषमा के साथ-साथ आयुर्वेदिक दवाख़ाने को भी अपना धंधा बनाया, जो यूसुफ़ दहलवी के बेटे के बेटे मोहसिन दहलवी के द्वारा दिल्ली में आज तक चल रहा है।

इधर दवाख़ाना उधर शमा दोनों अपनी चोटियों पर थे। सन् 1950 तक आते-आते भारतीय फ़िल्म इण्डस्ट्री अपना स्वर्ण युग (गोल्डन ऐरा) मना रही थी। हर तरफ़ फ़िल्में उजागर थीं परन्तु मनोरंजन की हद तक उनकी चर्चा थी। बहुत कम लोग उनके संदेश को समझ पा रहे थे। बॉलीवुड की लोकप्रियता का फ़ायदा यूसुफ़ दहलवी तथा उनके तीनों बेटों ने ख़ूब उठाया और शमा को जम कर मसालेदार बना दिया। लेकिन मसालेदार यूँ ही नहीं बनाया बल्कि सर जोड़कर बड़े ध्यान से फ़ार्मूले तथा विधियाँ डालीं। यह पत्रिका केवल फ़िल्मी ही नहीं बल्कि इल्मी भी थी। एक पत्रिका को फ़िल्मी तथा इल्मी बनाने की चतुरता का श्रेय केवल इस परिवार को ही जाता है। यह उस

दौर का पहला निराला और अनूठा रूप था। एक ही पत्रिका में दोनों रंग। साहित्यिक कविताएँ, ग़ज़ल, गीत तथा अफ़साने बड़े बड़े साहित्यकारों तथा रचेताओं से लिखवाये गए। और हाँ साथ-साथ कहूँगा कि जो बड़े लेखक नहीं थे वे बाद में इस पत्रिका में लिखते-लिखते बड़े लेखक बन गए। साँच को आँच कहाँ मैं नाम गिनाए देता हूँ जैसे इस्मत चुग़ताई, फ़िराक़ गोरखपुरी, प्रकाश पण्डित, शकील बदायूँनी, गुलज़ार, रामलाल, राजेद्र सिंह बेदी, क़मर जलालाबादी, शमीम जयपुरी, शौकत थानवी, जिगर मुरादाबादी, ख़्वाजा अहमद अब्बास, वाजिदा तबस्सुम, नरेश कुमार शाद, सिराज अनवर, कृष्णचन्द्र, क़तील शिफ़ाई, सुदर्शन फ़ाकिर इत्यादि, ये 18 लेखक तो मुझे एक ही साँस में याद हैं। मुझे याद है मैं ने बहुत सी कविताओं और ग़ज़लों को पहले शमा में पढ़ा और बाद में आज के दौर में जगजीत सिंह तथा ग़ुलाम अली की आवाज़ में सुना, उदाहरणत:

''बात निकलेगी तो फिर दूर तलक जाएगी....'' या

''यह बहार का ज़माना, ये हसीं गुलों के साये, मुझे डर है बाग़बाँ को कहीं नींद आ न जाए''

एक तरफ़ तो बड़े-बड़े कवियों और लेखकों से भरपूर साहित्य का रंग और दूसरी तरफ़ फ़िल्मी मसाला, फ़िल्मों की कहानियाँ, अभिनेत्रियों तथा अभिनेताओं की तसवीरें, उनके बारे में मसालेदार ख़बरें, उनके इण्टरव्यू, सुधीर दर के द्वारा फ़िल्म गीतों के मुखड़ों पर हँसाते-हँसाते लुटा देने वाले कार्टून। सभी कुछ था इस पत्रिका में।

यह पहली पत्रिका थी जिसने इल्म को फ़िल्मी और फ़िल्म को इल्मी ज़रिया बनाकर पेश किया। जैसा मैं कह चुका हूँ कि फ़िल्मों को मनोरंजन का ज़रिया समझा जाता था। उस पर कोई निबंध या लेख लिखने का चलन भारतीय भाषा में बहुत कम था। इन लेखों को पढ़ कर पाठकगण तो गद्‌गद् हो उठे। उन्हें ख़ुदा भी मिला और विसाले सनम भी, इल्म भी मिला और फ़िल्म भी, एक तीर से दो निशाने, buy one get one free लेकिन यह सब लगता है बहुत आसान पर उसको सजोना बड़ा कठिन।

चलिये, अभी तो मैं पत्रिका के बारे में

शमा पत्रिका का अंतिम अंक

बातें ही कर रहा हूँ रूखी-रूखी। रूखा-रूखा बोलने का मैं क़ायल नहीं। तो चलिए आपको एक शमा पत्रिका दिखाता चलूँ। इस से आप को अच्छा अनुभव हो पाएगा। ऊपर ऊपर बातें करने से क्या फ़ायदा। आइए, शमा पत्रिका के अंदर चलते हैं। मैं अपने संग्रह से आपके सामने मार्च 1959 की एक शमा उठाकर लाता हूँ। यह देखिये, इस पत्रिका का मुखपृष्ठ, एक लड़की शरमाए, सर ढके, एक हाथ में पल्लू संभाले, दूसरे हाथ में गुलाब का फूल लिये, दरवाज़े के आगे खड़ी, मुस्कुराती हुई, पाठक की ओर देख रही है। इस पत्रिका के मुखपृष्ठ की चित्रकारी जानबूझ कर बड़ी सतर्कता से की जाती थी। यदि पाठक पुरुष है तो बड़ा संतुष्ट होगा क्योंकि यह एक घरेलू लड़की हदों के अंदर है परन्तु पाठक को निहार रही

सुषमा पत्रिका का अंतिम अंक

है। यदि पाठक औरत है तो वह भी इस चित्र में मुस्कुराती हुई लड़की को देखकर बहुत ख़ुश होगी क्योंकि देखने में बिलकुल उस जैसी है, मुस्कुराती घरेलू, उसकी सहेली जैसी। इस स्कैच के चित्रकार हैं इन्दरजीत इमरोज़। बाद में वे बहुत बड़े चित्रकार और कवि बने। ये वही हैं जो अमृता प्रीतम के जीवन साथी थे। मुखपृष्ठ के नीचे कोने पर मूल्य पचास नए पैसे लिखा है। आइये, मुखपृष्ठ पलटते हैं। दाईं ओर के पन्ने पर नरगिस की बिन्दी लगाये, सर ढके, पुजारिन के रूप में फ़ोटोग्राफ़ और बाईं ओर फूल लिये शरमाई हुई नूतन का फ़ोटो है। याद रहे हर फ़ोटो के नीचे फ़ोटो से संबंधित शेर लिखे हैं। फिर तीसरे पृष्ठ पर केश खोले नशीली आँखों को कैमरे में डाले निशी का चेहरा है जिस के नीचे शेर है:

मुहब्बत का तुम से असर क्या कहूँ
नज़र मिल गई दिल धड़कने लगा

वाह वाह, क्या बात है! और फिर मीना कुमारी की दर्द भरी तसवीर उस के बाद अगले पन्ने पर अशोक कुमार एक फड़कते हुए शेर के साथ। यह सब मैं इस लिये बता रहा हूँ कि इस पत्रिका की ख्याति का कारण आप पर छोड़ दूँ।

अब बाईं ओर के पन्ने पर ऊपर लिखा है, ''राज़ो नयाज़'' जिसके अंतर्गत संपादक का संदेश है, परन्तु नीचे किसी का नाम नहीं। इसी पन्ने पर संपादकीय की दाईं ओर ऊपर लिखा है प्रकाशन का इक्कीसवाँ साल। इसके बाद उसी के नीचे मुख्य संपादक यूसुफ़ दहलवी, संपादक यूनुस दहलवी, चित्र संपादक इदरीस दहलवी लिखा है। सबसे छोटे बेटे इलयास दहलवी का नाम नहीं है। क्यों? यह मैं बाद में बताऊँगा। और इसके नीचे चित्रकार के रूप में इन्दरजीत का नाम लिखा है। अगले पन्ने पर सोहराब मोदी की फ़िल्म ''मिनिस्टर'' का विज्ञापन है जिस में नीचे लिखा है, दिल्ली और यू.पी. के डिस्ट्रीब्यूटर ''शमा डिस्ट्रीब्यूटर'' हैं। और इस के बाद अगले तीन पन्नों पर मुग़ले आज़म का विज्ञापन बड़े बड़े सुन्दर चित्रों के साथ है। फिर नलिनी जयवन्त की फ़िल्म ''मिलन'' का विज्ञापन और अगले पेज पर ''पसे मंज़र'' के शीर्षक के अन्तर्गत बहुत सारे फ़ोटो अगले चार पन्नों पर हैं। ये चित्र फ़िल्म अभिनेताओं

तथा अभिनेत्रियों के हैं मगर ये चित्र फ़िल्मों से नहीं, उनके प्राइवेट समारोहों में से लिये गए हैं, और ज़्यादातर उनके स्कैण्डलों के बारे में हैं। फिर ''तिनके'' नामक शीर्षक के अन्दर श्यामा, नन्दा तथा जबीं के बारे में उनकी निजी छुपी कहानियाँ बताई गई हैं यह चोर की दाढ़ी में तिनके की तरफ़ संकेत है। और आगे कलाकारों के इस माह के जन्मदिन दिए गए हैं। लिखा है कि आप इन कलाकारों को पत्र भी लिख सकते हैं। यदि आप शमा का हवाला देंगे तो उनसे उत्तर भी आएगा। आगे चलकर फ़िल्मी कलाकारों के समाचार उनके चित्रों के साथ दिये गये हैं।

अब बारी है उर्दू शायर फ़िराक़ गोरखपुरी की अगले पन्ने पर 27 शेरों की मन को छूने वाली ग़ज़ल इन्दरजीत की बनाई चित्रकारी के साथ। इसके बाद अगले कई पन्नों पर प्रसिद्ध लेखक कृष्णचन्द्र की कहानी की कहानी ''खट्टे अनार मीठे अनार'' सुसज्जित है। और पन्ने के हर ऊपरी कोने पर एक अभिनेत्री की तसवीर जैसे अनीता गुहा की तसवीर इस पन्ने पर इस शेर के साथ-

शबाब आया किसी बुत पर
फ़िदा होने का वक़्त आया

कपड़े कंधों से ज़रा नीचे खिंचे हुए, आँखें पाठक पर टिकी हुईं, और उसी पेज की दाईं ओर चार्मस स्नो क्रीम का विज्ञापन कहता है कि ''आपके हुस्न को बढ़ाती है उसकी हिफ़ाज़त करती है''। आगे चलकर उर्दू का विख्यात कवि नरेश कुमार शाद की आठ शेर की ग़ज़ल यूँ शरू होती है-

''अर्क़ आलूद पेशानी हँसी मासूम होती है
हँसी रुख़ पर पशेमानी इसी मालूम होती है''

(अर्क़ आलूद पेशानी = भीगा माथा, पशेमान = शर्मिन्दगी)

इस ग़ज़ल पर बिखरे बालों वाले सुन्दर चहरे का स्कैच बड़ा सुन्दर दिखता है। फिर एक और कहानी इस्मत चुग़ताई की। उसके बाद सालिहा आबिद हुसैन का अफ़साना ''हमदर्द''। यहाँ यह भी बताता चलूँ कि जितनी फ़िल्मों के विज्ञापन हैं उन में से शायद आधों का शमा ही डिस्ट्रिब्यूटर है। एक और विज्ञापन लम्बे काले बालों के लिये पामोलिव कोकोनट आयल शैम्पू। इसके

फ़िराक़ की ग़ज़ल इंद्रजीत का स्कैच

पेज पर बाल सफ़ा साबुन जिसमें लगभग अधखुले कपड़े पहने एक महिला खड़ी है। फिर एक विज्ञापन अफ़ग़ान स्नो तथा मेकअप सैट एक मुस्कुराती औरत के साथ। अफ़साने के बाद दो छोटे शायरों की ग़ज़लें एक ही पेज पर जो आगे चलकर बहुत बड़े शायर बने, बिस्मिल सईदी तथा महशर बदायूँनी। यह शमा का ही कारनामा है जिन्होंने उन्हें यहाँ तक पहुँचाया। इस्मत चुग़ताई के अफ़साने ''फ़नान्सर'' के तुरन्त बाद एक और औरतों के लिये कोलगेट परफ़्यूम्ड हैयर आयल औरत के लम्बे बालों के साथ। फिर सलाम मछलीशहरी की कविता है। फिर सीज़र्स सिगरेट का विज्ञापन फिर आगे एक और उपन्यासों का इश्तहार ये सारे 95 उपन्यास शमा बुक डिपो से प्रकाशित हुए हैं। फिर एक अफ़साना है

शमा का नवंबर 1959 अंक

उसके बाद एक ही पन्ने पर दो नई कवयित्रियों की ग़ज़लें हैं । इसके बाद है ''बज़्मे शमा'' यानि प्रश्नोत्तर का भाग। इस में पाठक सवाल पूछते हैं और संपादक जवाब देते हैं और कभी-कभी चुटकुले मिलाकर भी जवाब देते हैं। हर बार याद दिलाता हूँ कि पत्रिका के दोनों कोनों पर फ़िल्मी कलाकारों के चित्र ख़ासतौर से अभिनेत्रियों के चित्र शेरों के साथ मौजूद है। फिर ''कसौटी'' के अन्तर्गत शमा के अन्त में फ़िल्मों पर आलोचना भी की जाती है। और फ़ौरन उसके बाद 9 कशीदाकारियों के विज्ञापन एक ही पन्ने पर हैं जिसमें लिखा है कि इन किताबों से अच्छे-अच्छे फूल निकाल कर आप अपने पति के रुमालों तथा तकियों पर काढ़ सकती हैं। ये भी सारी पुस्तकें शमा बुक डिपो से प्रकाशित हैं। फिर अन्त में ''बाज़गश्त'' शीर्षक के नीचे पाठकों के पत्र छपे हैं। बहुत असम्भव है एक शमा के बारे में सब कुछ बताना। न जाने एक शमा में कितने विज्ञापन केवल औरतों के लिये ही हैं। मगर हाँ, एक साबुन का इश्तहार बच्चों की त्वचा के लिये भी है। और सबसे बाद में है अदबी मुअम्मा (साहित्यिक क्रौसवर्ड पज़ल) जिसके जीतने वाले का पुरस्कार पंद्रह हज़ार रुपये है। फिर अन्त में दो अलग-अलग पन्नों पर सुन्दर शेरों के साथ नूतन और शकीला की तसवीरें हैं। क्या-क्या नहीं है एक पत्रिका में, सारी दुनिया बंद है एक ही पिटारी में, यानि गागर में सागर।

पूरी एक शमा देखने के बाद अब आप देख सकते हैं कि यह पत्रिका केवल पुरुषों के लिये ही प्रकाशित की गई थी, अभिनेत्रियों की प्यारी प्यारी तसवीरें, फ़िल्मी मसाला इत्यादि मगर विज्ञापन लगभग सारे ही औरतों के लिये हैं। यह क्यों हुआ? इसके जवाब में मैं कहूँगा कि इस पत्रिका में फ़िल्मी मसाला इतना था कि औरतों तथा बच्चों के लिये इसे पढ़ना बुरी बात समझी जाती थी। वाजिदा तबस्सुम, इस्मत चुग़ताई तथा कृष्णचन्द्र लैंगिकता पर खुलकर लिख रहे थे। लगभग यह पत्रिका औरतों और बच्चों के लिये निषिद्ध थी। जितनी यह निषिद्ध थी, उतनी ही औरतों के द्वारा ज़्यादा पढ़ी गई। जब महिलाओं ने इसे छुप-छुप कर पढ़ना शरू किया, तो पुरुषों में

इस पत्रिका को पढ़ने की और जिज्ञासा जाग उठी कि देखें वह क्या है जो औरतों को पढ़ना मना है। संपादक को यह पता था कि औरतों की Readership तेज़ी से बढ़ रही है जबकि इस पत्रिका की तैयारी मर्दों की रुचि को देखते हुए की जा रही थी और संपादक जानते थे कि औरतें इसे पढ़ने से बाज़ नहीं आएँगी, जिसके कारण विज्ञापन अधिकतर औरतों के लिये ही थे। तीर निशाने पर लग रहा था।

मुझे आज भी याद है अपने बहन भाइयों से छीन कर शमा पढ़ना। उस समय अच्छी औरतों और अच्छे बच्चों को इस तरह की कहानियाँ या फ़िल्मी चीज़ें पढ़ने की आज्ञा न थी। यदि पढ़ते हुए पकड़े जाते तो यह और बात है। पुरुष, बच्चे, महिलाएँ सभी शमा पढ़ रहे थे मगर एक दूसरे से छिपकर। छिपके पढ़ने में हम सब को बड़ा मज़ा आ रहा था।

और इन सबसे ज़्यादा मज़ा आ रहा था दहलवी परिवार को। उन्होंने अपने ज़माने की सारी पत्रिकाओं के रिकार्ड तोड़ दिये थे। सुना है सन् 1949 के दौरान ही इन्होंने एक लाख से भी अधिक सरक्यूलेशन कर लिया था। उस समय की कोई भारतीय पत्रिका प्रसारण में इनका मुक़ाबला न कर पा रही थी, चाहे ''बीसवीं सदी'' हो, ''सरिता'' हो, या ''Illustrated Weekly''। उन्होंने अपनी शाख़ाएँ लाहौर, कराची, ढाका, अफ़ग़ानिस्तान तथा इंग्लैण्ड, जहाँ जहाँ उर्दू-हिन्दी बोलने वाले प्रवासी थे वहाँ वहाँ शमा रोशन होने लगी। भाषा का घर-घर प्रचार होने लगा। इस पत्रिका ने भाषा की जो सेवा की शायद ही किसी पत्रिका ने की हो। शमा भारत की एक बहुत महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में गिनी जाने लगी। दहलवी परिवार को शायद पता भी न था कि वे भाषा की सेवा कर रहे हैं या अपनी। पैसा उनकी उन्नति का प्रतीक था। एक इण्टरव्यू में ख़ुद यूनुस दहलवी ने मेरे प्रश्न पर मुस्कुराके कहा, ''हम भाषा की सेवा कर रहे थे, यह हमें पता भी न था। लोगों ने कहा, तो हमने कहा, जैसा आप कहें। हमारा ध्यान तो कहीं और था।''

साहित्य प्रेमी कहते थे कि शमा साहित्यिक नहीं है, फ़िल्मी है, परन्तु वे भी पढ़ते जाते थे और कहते जाते थे कि हम

लेखक, जॉन, मोहसिन पुराने अंकों के साथ

शमा नहीं पढ़ते। मगर हाँ, यह सच है कि शमा के अदबी मुअम्मे भरकर प्रतियोगता में उतरना एक साहित्यिक शौक़ था। बड़े-बड़े साहित्य प्रेमी मुअम्मों की लत में गिरफ़्तार थे। मुअम्मों में भाग लेने के लिये शमा में कूपन छापे जाते थे, और एक-एक व्यक्ति कई-कई शमा पत्रिका की कापियाँ ख़रीदता था। यहाँ तक कि दूसरों के लिये मुअम्मे भरने वालों ने अपना एक व्यापार बना रखा। इस मुअम्मे ने तो शमा के ''वारे के नियारे'' कर दिये थे, और दूसरी तरफ़ से विज्ञापनों से पैसा आ रहा था, ख़ासकर महिलाओं के विज्ञापनों से। जबकि शमा पर पुरुष पत्रिका का ठप्पा लगा हुआ था। दहलवी परिवार शमा को ऐसे ही रहने देना चाहता था ताकि औरतों का चाव इस पत्रिका के प्रति बना रहे।

''अच्छी औरतों के लिये शमा का पढ़ना अच्छा नहीं'' यह इसे बेचने के लिये अच्छा उपाय था। इस से पहले कि संपादक पर आरोप आए, कि आप समाज में यह क्या फैला रहे हैं, उन्होंने ख़ामोशी से इस आरोप को इस तरह स्वीकार किया कि विशेष रूप से महिलाओं की एक अलग पत्रिका शुरू कर दी जिसका नाम ''बानो'' (आदरणीय महिला) था।

1951 के आस पास ''बानो'' पत्रिका पहले से ही दिल्ली में अनवर दहलवी नामक एक महाश्य चला रहे थे। दहलवी परिवार से उनका कोई सम्बंध न था। अनवर दहलवी की पत्नी का नाम ''बानो'' था। जिस पर इस पत्रिका का नाम रखा गया होगा। दहलवी परिवार ने बानो अनवर दहलवी से ख़रीदकर अपने घर में डाल ली और अनवर दहलवी साहब को अपने दफ़्तर में लगा लिया। बड़े बेटे यूनुस दहलवी की पत्नी बेगम हिना कौसर ने बानो पत्रिका की बाग डोर संभाली और वे उसकी संपादक हो गईं। इसके बाद उनकी बेटी सादिया दहलवी दफ़्तर बंद होने तक बानो की संपादक रहीं। और यही सादिया दहलवी साथ-साथ टीवी के नाटकों में भी काम करती रहीं।

देश की स्वतंत्रता से ज़रा पहले बच्चों की कुछ पत्रिकाएँ काफ़ी मशहूर हो रही थीं जैसे लाहौर से ''फूल'', बिजनौर से ''गुंचा'', भारतीय सरकार के द्वारा दिल्ली से ''नौनिहाल'' आदि। दहलवी परिवार ने देखा कि ये बाल पत्रिकाएँ अच्छी तो हैं पर बहुत उपदेश जनक हैं। बच्चों को इन में बहुत पैट्रोनाइज़ किया गया है, और बच्चों को बच्चा ही बनाकर रखा गया है। उन्होंने सोचा कि क्यों न ऐसी बच्चों की पत्रिका चलाई जाए जो बच्चों की दोस्त बने न कि केवल शिक्षापुस्तक। ''खिलौना'' पत्रिका इसी सोच का नतीजा है। बाद में इसको हिन्दी में ''दोस्त'' के नाम से भी प्रकाशित किया गया। इसमें बच्चों की कहानियाँ कृष्णचंद्र, सिराज अनवर, ख़्वाजा अहमद अब्बास, तथा राजेन्द्र सिंह बेदी जैसे बड़े बड़े लेखक लिख रहे थे। मुखपृष्ठ पर लिखा होता था ''8 से 80 साल तक के बच्चों के लिये।'' यह पत्रिका खिलौना बच्चों में बड़ा विख्यात रहा। ''नस्तूर के कारनामे'' एक सचित्र धारावाहिक कहानी हर खिलौने में छपती थी। इस कहानी में एक पाठशाला थी जिसमें छात्र बच्चे नस्तूर की जादूगरियों से मुग्ध होते थे। हैरी पाटर जैसा मज़ा तो हम उस दौर में ही ले रहे थे या यह कहूँगा कि जब हैरी पाटर मेरे हाथ में आया, मुझे कुछ-कुछ जाना पहचाना सा लगा। जब खिलौना शुरू हुआ था तब इलयास दहलवी साहब बहुत ही छोटे थे और जल्द ही उन्होंने इसका संपादन सँभाल लिया।

लगभग 1959 में यूनुस दहलवी को लगा कि उनके आस-पास कुछ हिन्दी पत्रिकाएँ शमा बनने का प्रयत्न कर रही हैं तभी उन्होंने शमा को हिन्दी लिपि में भी

प्रकाशित करने की ठानी। शमा से मिलता जुलता नाम ''सुषमा'' से अच्छा क्या हो सकता है, जैसे दो जुड़वाँ बहनें। शमा-सुषमा एक साथ छपने लगीं। यूनुस दहलवी ने करुणा शंकर से इसमें सहायता ली और शमा जो नस्तालीक़ (उर्दू लिपि) में थी, उसको सुषमा के नाम से देवनागरी (हिन्दी लिपि) में भी प्रकाशित किया जाने लगा। उतनी ही प्यारी छवी, उतना ही रस, उतनी ही मधुरता, उतनी ही मोहिनी सूरत सुषमा की थी जितनी शमा की। क्योंकि एक ही बाप की तो ये दो बेटियाँ थीं। शमा ने हाथ में हाथ लेकर सुषमा को चलाना शुरू कर दिया।

मगर राज किसका हमेशा चला है? यदि हिमालय के ऊपर चोटी तक पहुँच जाओगे, तो आगे कुछ नहीं। दूसरी तरफ़ से उतरना ही होगा। दहलवी ख़ानदान ने जब-जब आवश्यकता महसूस की एक नई पत्रिका निकाल दी। कभी कोई डाइजैस्ट, तो कभी डिटैक्टिव पत्रिका तो कभी संध्या समाचार। बीसवीं सदी हमेशा शमा के रास्ते में आती ही रही लेकिन सुषमा-शमा के इल्मी-फ़िल्मी विधि को लेकर दूसरी और हिन्दी-उर्दू पत्रिकाएँ उभरने लगीं। चारों ओर से शमा बुक डिपो को ''रूबी'', ''फ़िल्मी सितारे'', ''सरिता का उर्दू रूप'', ''चन्दामामा'', ''कलियाँ'', ''बाल भारती'' इत्यादि ने चारों तरफ़ से घेर लिया था। दहलवी परिवार को बाहर की इन सब पत्रिकाओं से भरसक मुक़ाबला करना पड़ रहा था।

बाहर तो मुक़ाबला था ही, घर में भी शुरू हो गया। बहुत सी पत्रिकाएँ शुरू कर के अपने अंदर दहलवी परिवार की ख़ुद की पत्रिकाओं के रीडर भी कई भागों में बँट गए थे और ऊपर से दफ़्तर का काम भी बढ़ चुका था। एक समय में एक दफ़्तर से अनगिनत पत्रिकाएँ निकलने लगीं जैसे शमा, सुषमा, बानो, खिलौना, शबिस्तान, मुजरिम, दोषी, आईना, सुषमिता, दोस्त, इत्यादि। इसके साथ-साथ शमा मुअम्मे का एक बहुत बड़ा काम, शमा बुक डिपो से हज़ारों नॉवल्स, खिलौना बुक डिपो से बच्चों की कहानियाँ, कढ़ाई के लिये कशीदाकारी पुस्तकें, बड़ा दवाख़ाना, शमा लैबोरेट्रीज़, जंत्रियाँ वग़ैरा वग़ैरा। ये थीं वे पत्रिकाएँ तथा

शमा का दिसंबर 1956 अंक

दूसरी पुस्तकें और ज़िम्मेदारियाँ जो एक ही समय में एक ही दफ़्तर में चल रही थीं। साथ-साथ दहलवी परिवार ने फ़िल्में बनानी शुरू कर दीं जिस में एक ''शिकारी'' फ़िल्म भी थी। मीना कुमारी को लेकर ''सलमा'' एक बड़े नुक़सान के साथ अधूरी रह गई।

सन् 1985 में हाफ़िज़ यूसुफ़ दहलवी गुज़र गए, राजा का देहान्त हो गया, शमा और सुषमा बे बाप की हो गईं।

दो बहनें आपस में लड़ पड़ीं। दुनिया का सबसे अनोखा उदाहरण कि एक ही भाषा अपने अन्दर आपस में लड़ रही है। फ़िल्मफ़ेयर उनकी तरफ़ मुँह खोले आ रहा था। किसी ने कहा, यदि शमा एक भाषा में होती, तो उसकी ऊर्जा न बँटती और पूरा बल एक ही पत्रिका में रहता। पता नहीं, यह कितना सच है पर हाँ, बँटने से कौन मज़बूत हुआ है? मिसाल सामने है। शमा तो चलो उर्दू की थी, पर बेचारी सुषमा को किसने निगल लिया, बँटने ने?

स्वर्ण युग में अर्थात् सन् 1950 से 1970 तक बड़े-बड़े लेखकों ने शमा-सुषमा को सुसज्जित किया जो शमा-सुषमा के द्वारा ही बड़े लेखक बने थे, मैं जिनकी सूचि पहले दे चुका हूँ। वे सब कहाँ गए? इन्होंने शमा-सुषमा की डूबती नैया क्यों न बचाई? क्या इन्होंने डूबती नैया देखकर दूसरी नैया अपना ली, या नैया के डूबते ही लिखना बंद कर दिया? नहीं। इनमें से कुछ ने तो मशहूर होने के बाद शमा से विदा ली और वे शमा को सीढ़ी बना कर अब केवल साहित्य की पत्रिकाओं में लिखने लगे। कुछ महिला लेखकों ने शमा-सुषमा की बेबाकी से पर्दा कर लिया। केवल वाजिदा तबस्सुम या एक आध और लेखिका साहस के साथ डटी रही। वाजिदा तबस्सुम ने तो शमा बुक डिपो से कई उपन्यास भी निकाले।

यही नहीं कि भाषा के साथ-साथ साहित्य लेखकों तथा फ़िल्म लेखकों को शमा ने आगे बढ़ाया था बल्कि चित्रकारों को भी एक अच्छा स्थान दिलवाया। मुखपृष्ठ, ग़ज़लों और कहानियों पर जो स्कैच चित्रकारों से शमा-सुषमा ने बनवाए, उनका अब तक कोई उदाहरण नहीं। इन्दरजीत इमरोज़, सिद्दीक़ी, जगदीश पंकज तथा ज़िया जैसे चित्रकार शमा-सुषमा से ही उभरे और इसी के साथ समाप्त हो गए।

भाग्यवश मेरी भेंट शमा के मशहूर चित्रकार इन्दरजीत इमरोज़ से शमा के हवाले से डॉक्टर सुधा ओम ढींगरा के द्वारा हुई। तब मालूम हुआ कि वे एक शायर भी हैं जोकि अमृता प्रीतम के जीवन संगी भी थे। इण्टरव्यू के दौरान उनका कहना था कि उन्होंने साहिर लुधियानवी को रक़ीब की जगह दोस्त माना।

चित्रहार के शुरू होने के साथ लोगों की नज़र दूरदर्शन पर लग गई। हर सप्ताह चित्रहार चहकने लगा। कुछ सालों बाद फ़िल्मी समाचार भी टीवी पर आने लगे और फ़िल्मी स्कैण्डल भी। घर के लिविंग रूम में पत्रिकाओं की जगह टीवी ने ले ली। इस से सभी पत्रिकाओं की हिम्मत टूटी परन्तु सुषमा-शमा सबसे ज़्यादा ज़ख़्मी हुईं क्योंकि वे सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध थीं। हिन्दी-उर्दू पर लगातार बहसें चल रही थीं, एक ही भाषा अपने अंदर आपस में लड़ रही थी, दो बहनों में ठन गई। जब घर में झगड़ा होगा, तो बाहर वालों को आनन्द आएगा ही। अंग्रेज़ी को मज़ा आ गया। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों की भाषा कहलाई जाने लगी। दो बहनें जो एक दूसरे के लिये एक दूसरे का अस्तित्व थीं, जिनका आँगन एक, और चोले दो थे। आँगन से भी वे एक दूसरे को धकेलने लगीं। आपस में राजनीति का चूल्हा भड़क उठा।

और साथ-साथ दहलवी परिवार की अगली पीढ़ी के भी चूल्हे बँट गए। हाफ़िज़ यूसुफ़ दहलवी के पोते और इलयास दहलवी के बेटे का ई-मेल मेरे पास आया,

कहा कि ''जर्मनी में मैंने एक कानफ़रैन्स में सुना है कि आप शमा-सुषमा के इतिहास पर रिसर्च कर रहे हैं, मैं आपसे मिलना चाहता था। मैं भी उसी महफ़िल का हूँ जिसकी शमा बुझ चुकी है।''

इस तरह मोहसिन दहलवी साहब से मेरी भेंट हुई। उन्होंने मुझे अपना दवाख़ाना दहलवी नैचरल्स दिखाया और शमा-सुषमा का दफ़्तर भी बाहर से आसफ़ अली रोड पर खड़े होकर दिखाया, जिसके साइन-बोर्ड जगह-जगह से टूट चुके थे। खिड़कियों से पेड़ की टहनियाँ और बंदर झाँक रहे थे। बिल्डिंग पर मुक़दमा चल रहा था।

अन्ततः मोहसिन दहलवी को एक दिन शमा-सुषमा दफ़्तर की चाबी मिली और मेरे कहने पर उन्होंने बचे खुचे इतिहास के कुछ पन्ने और फ़ोटो मेरे लिये दफ़्तर से बीन कर डिब्बों में रख लिये। मैं अमरीका से भारत गया उन्होंने वे डिब्बे मेरे हवाले ऐसे कर दिये जैसे कि यह मेरी अमानत हो। मैंने उन डिब्बों में क्या नहीं देखा। खोया हुआ इतिहास और उस इतिहास से कटा हुआ नई पीढ़ी का सम्बंध। वे फ़ोटो जो दहलवी परिवार वालों के साथ मीना कुमारी, राजेश खन्ना, वहीदा रहमान, शत्रुघ्न सिन्हा, कमाल अमरोही, नरगिस, श्यामा, सुनील दत्त, इत्यादि न जाने कितने अनमोल और नायाब चित्र थे जो एक डिब्बे में भरे पड़े थे। मैंने कहा, ''आपको ये अपने पास रखने चाहिए।'' उन्होंने कहा, ''भारतीय फ़िल्मी हीरो-हीरोइनें, ये किताबें, यह कल्चर, यह शमा, यह उपन्यास, हम क्या जानें ये सब। इन सब से हमें हमेशा बहुत दूर रखा गया।'' मैं काँप उठा। क्या एक ही पीढ़ी के बाद ही इतना फ़र्क़ आ सकता है? मैंने आँखों ही आँखों में पूछा, ''आपको कहाँ रखा गया?''

वे मेरी आँखें समझ गए। बोले, ''इंग्लिश स्कूलों में। ये चीज़ें हम से ज़्यादा आपके काम आएँगी।''

मैंने शमा और सुषमा कहाँ नहीं तलाश कीं। अलीगढ़ की रद्दी के ढेरों में, रावलपिण्डी के बाज़ारों में, दिल्ली के दरियागंज में, लाहौर में, भोपाल में, जयपुर में, वाराणसी में, काश्मीर में, हैदराबाद में, कहाँ-कहाँ की ख़ाक नहीं छानी? कहीं कहीं तो किसी के संग्रह से ऐसी शमा भी मिली, जिसमें से फ़िल्मी तसवीरें और उनके

वहीदा रहमान और यूसुफ़ देहलवी

बारे में काटकर फेंका हुआ था। मेरे मित्र गीता और सुरेन्द्र कौशिक ने भी मेरे शौक़ के जुनून को देखते हुए शमा-सुषमा एकत्र करने में मेरी काफ़ी सहायता की। लेकिन सन् 1939 से सन् 1999 तक की शमा-सुषमा एकत्र करना एक बहुत बड़ा बीड़ा उठाना है। मगर मेरा प्रण अपनी जगह है। सन् 80 और 90 के दशक की बहुत सी पत्रिकाएँ शमा-सुषमा के दफ़्तर में ऐसी मिलीं जिनके एक ही अंक की बीस-बीस पचीस-पचीस कापियाँ ढेर में थीं, जिस से मैं अनुमान लगा सकता हूँ कि शमा-सुषमा के सरक्यूलेशन में उस समय तक काफ़ी कमी आ चुकी थी जिसके कारण इतने अंक बचे रह गए।

इतनी कामयाब, इतनी महत्त्वपूर्ण, और प्रसिद्ध तथा सब की चहेती पत्रिका कैसे पलक झपकते समाप्त हो गई? इसके न जाने

नरगिस और यूसुफ़ देहलवी

कितने अनुमान, कितने मत, कितनी परिकल्पनाएँ हैं, कौन सा सच है, कौन जाने? पारिवारिक राजनीति, हिन्दी-उर्दू की राजनीति, दूसरी पत्रिकाओं से मुक़ाबला, अपनी ख़ुद की पत्रिकाओं में मुक़ाबले, दवाख़ाने, मुअम्मे का प्रबंधन न कर पाना, कामों के बखेड़े ज़्यादा फैला लेना, फ़िल्मों का डिस्ट्रिब्यूशन तथा फ़ाइनैन्स करना, और साथ-साथ फ़िल्में भी बनाना, अगली पीढ़ी को अपने हिन्दी-उर्दू व्यापार से दूर रखना, और उन्हें अपनी संस्कृति से परिचित न करवाना, टीवी और इण्टरनैट का आ जाना, शमा की विधियों का दूसरी पत्रिकाओं में आ जाना, लेखकों का शमा को सीढ़ी बनाकर दल बदलना, उर्दू को इस्लाम से जोड़ देना, इत्यादि, ये हैं वे सारे शमा-सुषमा के पतन के अनुमान। मेरा जवाब यह है, कि हिन्दी-उर्दू की राजनीति के दौर में भारत में आज भी हिन्दी-उर्दू पत्रिकाएँ चल रही हैं। पत्रिकाओं के मुक़ाबले तो और जोश लाते हैं। मगर अपनी ख़ुद की पत्रिकाओं में मुक़ाबला साहस तोड़ सकता है। विषेशकर जब व्यक्ति अपनी भाषा और संस्कृति से दूर हो। मगर हाँ, मुझे कहना पड़ेगा कि बाक़ी चीज़ें तो छोटी-छोटी हैं पर टीवी तथा इण्टरनैट से रीडरशिप और भारतीय लिपियों पर बड़ा आघात हुआ है, और यह भी है कि यदि परिवार में फूट न होती, तो दहलवी परिवार की कोठी मायावती को न बेच दी जाती।

एक पत्रिका के दो नाम, दोनों ने एक दूसरे को मार दिया, रोमन लिपि की मौज हो गई।

दिसम्बर 1999 में सहसा एक दिन संपादकों ने कहा, ''बस अब बंद कर रहे हैं हम।''

सब कर्मचारी हाथ झाड़कर उसी समय खड़े हो गए।

सन् 1939 में शमा के सबसे पहले अंक में निम्न लिखित शेर मुखपृष्ठ पर छपा था,

लो शमा हुई रौशन, आने लगे परवाने
आग़ाज़ तो अच्छा है, अंजाम ख़ुदा जाने

अंजाम के रूप में इण्टरनैट का सुनामी ऐसा आया कि दो बहनों की काग़ज़ की कश्ती किस लहर में कब डूबी, पता ही न चला।

***

कविताएँ

डॉ.अमरेंद्र मिश्र की कविताएँ

चेहरे

अब भीड़ का कोई चेहरा नहीं होता
सत्ता इसीलिए भीड़ को बरगलाती है
दिखाती है अपना खूँख्वार चेहरा
और भीड़ उसे ही देखती बराबर !
भीड़ का कोई चाल-चरित्र नहीं होता
अक्सर वह पानी सा बहती है
थोपे हुए जज़्बात महसूसती है
हत्यारों की गोली झेलती है।
भीड़ कभी-कभी महज़ भ्रम होती है
कभी दिखती, कभी अदृश्य होती है
कभी चलती कभी रुकती है
कभी सोती कभी झुकती है।
एक समय होती थी वह आग-सी
लाती थी तूफान होती थी उफान
एक आक्रामक निडर चेहरा था उसका
अब वही चेहरा कहीं खो गया है
अब भीड़ का कोई चेहरा नहीं होता
अब तो एक ही चेहरा दिखता रात और दिन में
जो भीड़ से अलग दिखता है
भीड़ उसे ही देखती है असहाय - सी
भीड़ को अब कोई नहीं देखता
देखता बस उस एक चेहरे को ही
होता जो भीड़ से बड़ा
शहर के इस चौराहे पर खड़ा !
बेमतलब भीड़ पर हँसता, ठहाका लगाता
भीड़ अब द्रष्टा होती है बस !

* * *

चलते हुए

यह वक्त गवाह है
सीधे-सादे लोग
सीधी-सादी भाषा बोलते
रोज़ी-रोटी कमाने
जिस रास्ते रोज़ गुज़रते थे
आज वही रास्ता
कई राहों में उलझ गया है
राह आसान कहाँ होती इस दौर में
जब रात-दिन झूठ बोला जा रहा हो
ख़बरें आएँ शृंगार करके निकलें महलों से
और हो शोरगुल कि यही सच है।
सच यह है कि रास्ते खोने लगे अब
घर से दफ़्तर और कारखाने तक
चौराहे पर साइन बोर्ड लगा है -
आगे जाने के सभी रास्ते बंद हैं
हुक्मरान नई राह बना रहे हैं
तब तक अगले आदेश का इंतज़ार करें !

* * *

एक आदमी का क़द

एक बौने आदमी का क़द
उसकी परछाँई से अचानक बड़ा हो गया
शहर में हंगामा हो गया
उसकी छाया को छूने की होड़ मची है।
बौने क़द वाला आदमी
अपनी परछाई से खेलता है
फिर लोगों की क़द काठी के साथ
और बनाता है, अपने जैसा
लोग बन गए ठीक वैसा,जैसा वह चाहा
पर उनकी परछाई बड़ी नहीं बनी, रही बौनी ही
हंगामा फिर बरपा
वह मुसकराया फिर हँसा ठठाके
देखता लंबी परछाईं, खोया अँधेरे में !
सपने दिखाता
आएगा फिर से
पाँच साल बाद
फिर दिखेगा मुसकराता..
चूल्हे चौकी की चिंता में लोग
अपनी उम्र झोकेंगे अदहन में
एक ही चूल्हा जलेगा एक ही आँच जलेगी
बौना आदमी जब आएगा फिर से!

* * *

ब्रह्म

उन्होंने भीड़ से ख़ुद को ब्रह्म कहा
भीड़ हुई चकित, लोग हैरान, ज्ञानी परेशान
माँगे गए सुबूत ब्रह्म होने के उनसे
हुए वो चुप,
कसम ली खामोश रहने की
दिन खामोश, रात खामोश, खामोश जहाँ
चुप चुप्पी सन्नाटा बुनती ख़िजा चुप
घड़ी दो घड़ी का वक्त चुप
दिन बीते, मौसम गुज़रते मुसाफिर से
लेकिन न सन्नाटा टूटा
न बर्फ पिघली
न उन्होंने कुछ कहा किसी से
श्रोता पूछते रहे सवाल रोज़
और वो खामोश सुनते रहे
मुस्कराते रहे सफेद दाढ़ी में
खिलते रहे सफेद कपड़ों में
पर बने रहे बुत से चुप
न हिले न डुले न कोई गिले-शिकवे !
आवाज़ें हुईं तेज़, शोर और कोलाहल
ज्ञानी बोले-
ढोंगी है यह, है पाखंडी, है शिखंडी-सा
साबित करे, वही है ब्रह्म, है ईश्वर और परमेश्वर
वो चुप ही रहे-
खो गए शून्य में, विचरण किया नभ में
आँखों में भरा अंजन, कपाल पर चंदन
हुए अंतरधान और पानी पर लिखा यह लेखा-
मैं मौन हूँ,
मैं खामोश हूँ,
मैं चुप हूँ
चराचर जगत् डूबा गहन सन्नाटे में
मैं अनंत शून्य हूँ आकाश समेटे धरा पर
मैं इसीलिए ब्रह्म हूँ।
ब्रह्म भी मौन होता है
मैं भी जाने कब से मौन साधे बैठा हूँ
तुम्हारे सवाल का मैं जवाब हूँ
ब्रह्म ऐसा ही है
इसलिए मैं ब्रह्म हूँ !

* * *

संपर्क: 'मौसम', 4/516 पार्क एवेन्यू,
वैशाली, गाजियाबाद - 201010
ई-मेल: amarabhi019@gmail.com
मोबाइल: 09873525152

पंकज त्रिवेदी की कविताएँ

आओ हम भी बहने लगें... !

ज़िंदगी के हर एक पल को मैंने
समझने की कोशिश की,
उसका स्वागत किया और हमेशा
विपरीत संजोग में लड़कर उठ खड़ा होने
को हमेशा तैयार रहा...

यह मेरा स्वभाव है, मेरी नियति भी
ज़मीं पे पैरों को ठहराकर आगे बढ़ता हूँ
कुछ कदम चलकर
अतीत को मुड़कर
देखता रहता हूँ
और उसी में से एक नई राह मिलती है मुझे
जो फिर से मुझे आगे ले जाती है
कुछ कदम !

नहीं भूलता मैं उन लोगों को
जिसने थामा हों मेरा हाथ
और जिनके कंधे पे
संजोग की नदी को पार करके
मैं खड़ा हुआ हूँ
ज़िंदगी है,
जो कभी अपनों में ही आशंका पैदा करें
या परिस्थिति के आधार पर अलग-थलग
करें
अनुभव हैं मेरा,
आप जिसके साथ दिल से जुड़े हैं
वो रिश्ते कभी नहीं मिटते और न मिटाया
जा सकें
रिश्तों की वो लकीर होती हैं
जो हमारे जज़्बात की नींव बनकर अंदर ही
अंदर निरंतर बहती है..

यही तो ज़िंदगी है
जो हमें अपने अतीत के बल पर
आगे बढ़ाती है और परिवर्तन के साथ
एक-एक व्यक्ति के साथ अपने ऋण चुकाने
के बाद हमें
मुक्ति दिलाती है...

ये ज़िंदगी अनमोल हैं,
हर पल को चाहों इसे
और हर उस व्यक्ति का सम्मान करो
जो हमें भले ही नज़रअंदाज़ करें फिर भी
यही सोचो
उसके सीने में भी दिल है,
जिसमें ठहरी हुई है
एक लुप्त नदी !

जो आपके प्यार को पाकर फिर एकबार
बहने लगेगी निरंतर और हमारे कर्मों से
मुक्ति दिलाकर ले जाएगी खींचकर हमें
और धीरे-धीरे उसी जलप्रवाह से हमारे मन
की
बुराईयों को पिघलाकर निर्मलता में
परिवर्तित करेगी हमें....

आओ हम भी बहने लगे उसी प्रवाह में
निरंतर.... !

***

सपना ही सही

तुम चुपके से आती हो

देखती हो मुझे कविता लिखते
बिना शोर किए, खुशी से क्यूँकि
तुम हमेशा चाहती हो कि
मैं निरंतर लिखता रहूँ

तुम्हारा मौन भी मेरे लिए
बहुत बड़ा संबल है

कईं बार हम ऐसे जी लेते हैं
अपनी ज़िंदगी जिसमें सिर्फ
एक दूसरे की खुशी में ही
अपनी खुशी मान लेते हैं

और जब एक दूसरे की आँखों में
देख लेते हैं तो खुशी से नमीं
छलकती है और हृदय खुशी से
झूमता है और हम भी मन ही मन !

***

ऐसे ही देख रहा हूँ अकेला

ऐसे ही देख रहा हूँ अकेला
अपने कमरे में अलमारियाँ
खिड़की से आती धूप तेज़

खुद ही से बात करता हुआ
खुद ही में खोया सा मंज़र ये

कौन कब आ जाता है मेरे
स्मृतिपट पर जलवा दिखाने

कौन है ये नहीं जानता हूँ मैं
कहीं चुपके से तुम तो नहीं ?

***

पुरानी किताबें

पुरानी किताबें
पुरानी हस्तप्रत
पुराने हिसाबों की सूची
पुराने रिश्तों की महक

रद्दी में डालने से पहले
सोचा एक नज़र देख लूँ

मोतियों से अक्षरों में
उभरता हुआ चेहरा
नज़र आया और बस
देखता रह गया मैं जैसे

बालों में फूल सजाकर
नाचती हुई आती थी
आँखें नचाती वो परी

अंकल, मैंने कविता लिखी
आँखों से टपकती बूँदों में
धुँधला हो गया उसका चेहरा

मेरे हाथ में पीला सा कागज़
मोतियों से अक्षरों में उभरी
वो कविता और उसका चेहरा

शायद अब मेरे हाथ में
यही तो बच पाया है और दिल में
उसकी मासूम सी हँसी !
***

ज़िंदगी बहुत कम बची है दोस्त !

मगर जान लो ये बात ..
मैं ज़िंदगी के पीछे दौड़ता नहीं
मौत से घबराता नहीं !

ज़िंदगी को ख़ूबसूरत बनाने के लिए
बेशुमार सपने भी देखता हूँ
उन सपनों के लिए मेहनत करता हूँ !

मगर वो सपने मेरे है, मेहनत भी मेरी
किसी पर कोई आरोप या ईर्ष्या नहीं
जो साथ आते है, उन्हें स्वीकारता हूँ !

कुछ भी न करने से भला मनचाहा कुछ
करके भी जाऊँगा यही तो ठान ली है हमने
आपको हम पसंद हो न हो,
ये हो सकता है !

मगर अपना प्यार, स्नेह, वात्सल्य से
जो कुछ छोड़कर जाऊँगा, तब मैं नहीं
मेरे शब्द होंगे, संवाद होंगे और आप भी !

ज़िंदगी बहुत कम बची है दोस्त !
***

खेल

कितना कुछ जान लेती हो तुम मेरे मन को

मेरे कुछ बोलने, न बोलने से ज़्यादा मेरे मन के
भीतर तक पहुँच जाती हो तुम...!

एक एक सलवटों से मन के कोने से तुम
हर वो बात को जान लेती हो जो मेरे सुषुप्त मन की
गहराई में गड़ा है वो भी... !

तुम्हारा होना ही मेरी ज़िंदगी का सपना था और
जब तुम हो तो लगता है कि मुझसे ज़्यादा ही तुम
मुझको जानने लगी हो... !

याद हैं तुम्हें कि उस रोज़ तुमने ही मेरे टूटे से दिल को
अपने प्यार के कच्चे धागों से पिरोया था और आकर
तुमने कहा था, लो ये दिल है... !

मैं देखता रहा था और तुम मुस्कुराती हुई कहती थी
अब कभी न टूटेगा तुम्हारा दिल, मैंने ही उन टुकडों को
जोड़ा है फिर से न टूटने के लिए...!

और तुम कितने ग़मों को संजोकर भी मुस्कुराती, मोरनी सी
नाचती थी मेरे पास और मैंने भी जान लिया था कि मेरी ही तरह
तुम भी टूटे दिल को सहलाती थी... !

यही ज़िंदगी हैं जिसके लिए हमें जीना होगा
वो - 'तुम हो !'
यही कहते हुए दोनों कितने समर्पित हैं एक-दूजे के लिए
दुगनी ऊर्जा से भर, रिश्तों की जड़ से जुड़े हुए
जान पे खेलने को तैयार हैं हम... !
***

संपर्क : गोकुलपार्क सोसायटी 80 फिट रोड, सुरेन्द्रनगर 363001- गुजरात
मोबाइल : 96625 14007

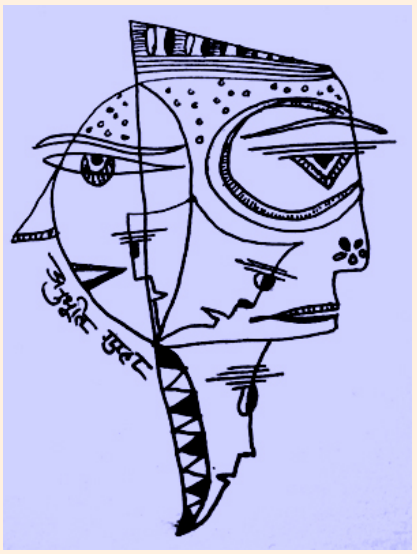

शैलेन्द्र शरण की कविता

तथागत हम कहाँ जाएँगे

और कुछ समय शेष है
हम खोने लगेंगे अपनी पहचान
छोटे शहर की बात और है
बड़े शहरों में कहाँ है
पड़ौसी से संबंध रखने का रिवाज
सिर्फ सुरक्षाकर्मी जानता है
चार सौ पाँच में रहने वाले का मिजाज

और कुछ सालों की देरी है
फिर संवेदनाएँ ढूँढ़े से नहीं मिलेगी
जन्म पर खुशी नहीं होगी
मृत्यु पर नहीं आएगा रोना
विदेश से फ़ोन पर सौंप देगा बेटा
किसी एजेंसी को
पिता की देह का अधिकार
और देख लेगा ऑनलाइन
पिता का दाह संस्कार

धीरे- धीरे ही आते हैं परिवर्तन
धीरे - धीरे ही होता है परिमार्जन
एक दिन न सुख होगा न दु:ख
खुशी होगी न पीड़ा
न होठों पर मुस्कान
न आँखों में आँसूँ
जन्म - मृत्यु, सुख - दुख पर तठस्थ
तथागत ! हम कहाँ जाएँगे
देखना एक दिन
दुनिया के सारे लोग बुद्ध हो जाएँगे।
***

संपर्क : 79, रेल्वे कॉलोनी, आनंद नगर खंडवा (म.प्र.) 450001, मोबाइल - 8989423676, फ़ोन 0733-2248076,
ईमेल - ss180258@gmail.com, shail_sharan1234@rediffmail.com

राजेन्द्र नागदेव की कविताएँ

सीढ़ियाँ

सीढ़ियाँ उतरते-उतरते इन दिनों बहुत डर जाता हूँ
डर से कुछ पल मुक्ति पाने
गाने लगता हूँ
गाने क्या, बस यूँही कुछ गुनगुनाने लगता हूँ
गुनगुनाना मन को ले चलता है अन्य दिशा में
पर तन का उतरना चलता रहता है अपनी ही तरह
पाँवों तक नहीं पहुँचता मन का विचलन
पहले एक उतरता है निचली सीढ़ी पर
क्षण भर ठहर
करता है साथी की प्रतीक्षा
दूसरा वही करता
अक्सर होता है कि एक के फिसल जाने पर
दूसरा भी करता है फिसलन का अनुसरण
और मैं कुछ कर पाने में अक्षम
बैंडेज बँधी अपनी काया
अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी होने की करता हूँ कल्पना
वह कोरी कल्पना नहीं होती
सत्य का समावेश उसमें
लगभग दूध में पानी की तरह होता है।
सीढ़ियाँ अन्ततः कहाँ जाकर खत्म होंगीं
पहले से तय नहीं होता
जब खत्म होती हैं तभी जाकर पता चलता है
उन्हें खत्म कहाँ होना था
नीचे ड्राइंगरूम में या अस्पताल के किसी बिस्तर पर

सीढ़ी की रेलिंग को जकड़ता हूँ हथेली में
लगता है भरभराने लगी है
सीढ़ियों से उतरने लगता हूँ
सीढ़ियाँ ढहने सी लगती हैं
जबकि सत्य यह है
और जो सनातन रहता आया है
कि मैं ही ढह रहा होता हूँ
सीढ़ियों पर होना ही
अपने अंदर ढहते रहना होता है

ऐसा भी लगता है कभी-कभी
कहीं कोई है मुझे थाम लेने,
पच्चीस हाथ ऊपर हवा में तनी हुई रस्सी पर चलती
आठ साल की नटिनी
कहीं से आकर मेरा माथा थपथपाती है
और मैं गिरते-गिरते खड़ा हो जाता हूँ
चलने लगता हूँ नटिनी की रस्सी पर उसकी उँगली थामे,
कुछ है जो सीढ़ियों पर जिलाए रखता है
संभव है वह केवल निर्विकल्पता हो
पर कभी-कभी लगता है
नहीं कुछ और भी है
तभी तो दुनिया पूरी अँधेरी नहीं है
कहीं जल रही है एक मोमबत्ती
कँपकँपाती सी ही सही
थोड़ा ताप दे रही है, थोड़ा उजाला
और बचा रही है मेरी हलचल को बर्फ़ बन जाने से
हर सीढ़ी में छिप कर एक बेचैन भूकंप बैठा है
मेरी लाठी को जो एक जग़ह टिकने ही नहीं देता
मैं बार-बार लड़खड़ाता हूँ
यह तन और मन के वार्धक्य की अँधेरी सुरंग है
जिसमें सीढ़ियों से चुपचाप गुज़र रहा हूँ
चुपचाप, कि भेजी गई आवाज़
इन दिनों किसी को सुनाई नहीं देती
मुँह लटकाए लौट आती है वापस

मेरे पास कहने को बस इतना बचा है
कि सीढ़ी लंबी होती जा रही है
और मेरी गति धीमी।

***

बस्ती पर बुलडोजर

भरभरा कर गिरी दीवार
दहल गया मन, कोई दब तो नहीं गया!
दबा है कोई, दबे हैं कई
दिखाई नहीं देते
जो आँखें देख सकती हैं, दूर तक नहीं हैं कहीं
कितना कुछ मलबे में पड़ा है मृत

देह का मरना केवल आदमी का मरना नहीं होता
आदमी का मरनाटुकड़ा-टुकड़ा जोड़ बने सपनों का मरना भी होता है

मुझे मलबे से सपनों के कराहने की आवाज़ आ रही है

बुलडोज़र हाथी मस्ती में चल रहा है बस्ती को दल रहा है
उसका सपनों से नाता नहीं होता

वह दीवार गिरी, वह खिड़की टूटी
वह शहतीर उखड़ ज़मीन पर आई
वह प्लास्टिक गुड़िया की देह पर से गुज़र गया बुलडोज़र
उसकी चीख किसी ने नहीं सुनी

पसीने में तर हथौड़े वाले हाथ
उठ रहे हैं, गिर रहे हैं
आघात से ध्वस्त सपने ये सारे उनके ही हैं,
शहर में बन रहा है कोई नया शहर
नए शहर में सब होगा
बस टुकड़ों-टुकड़ों में दशकों से अब तक बनते रहे
सपने नहीं होंगे

रातों-रात किसी ने बस्ती को पकड़ा दिए नए सपने
उन सपनों की नई ज़मीन होगी
लोग हथेलियों पर उलटपुलट रहे हैं नए सपने
कि उनका क्या करें!
तय नहीं सौ फ़ीसदी
कि ध्वस्त सपनों को कहीं मिलेगी ही ज़मीन
मिल भी गई तो, इतिहास बताता है
नई ज़मीन अक्सर चट्टानों पर मिली
कोई बताए किस तरह रोपे जाएँगे चट्टानों पर सपने?

***

स्टूडियो में बिल्ली

लगातार ताक रही है अभी-अभी उगे चाँद को
खण्डहर इमारत की मुँडेर पर बैठी बिल्ली

चाँदनी ने हवा में उकेर दिया है बिल्ली का धुँधला आकार
जैसे गत्ते से काट कर किसी ने रख दिया हो बिल्ली सा कुछ
वहाँ रंग नहीं हैं
वह चितकबरी, काली, सफ़ेद कुछ भी हो सकती है
जैसी भी हो उसकी छबि
मन-मस्तिष्क पर छा रही है

मुँडेर से उतर कर बिल्ली
स्टूडियो में मेरे कैन्वास पर आ रही है
कल्पना करता हूँ
और वह सच में आने लगती है
मेरे रंग, ब्रश,पेन्सिल, पैलेट
सब अपनी-अपनी जग़ह उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं
वह आ रही है और वह मुँडेर पर बैठी भी है

अभी-अभी उगा चाँद
दो बालिश्त और ऊपर आया
बिल्ली की आँखों में बल्ब जल रहे हैं
शेष देह अंधेरी है
वह उतर कर आ रही है मेरी दिशा में,
यह कोरी कल्पना हो सकती है
कला का संसार
कल्पना के ताने-बाने से ही बुना होता है

वह स्टुडियो के बंद दरवाज़े से
दबे पाँव भीतर आ गई प्रेतात्मा की तरह
पैलेट पर बैठ इधर-उधर ताका
रंगों को सूँघा, ब्रशों का जायज़ा लिया
मेरी आँखों में झाँका
सब सही लगा होगा
अचानक उछल कर कैन्वास पर आ गई
चाँदनी में धुला खण्डहर, खण्डहर की मुँडेर, उस पर बिल्ली
बाहर का पूरा दृष्य
स्टूडियो के अंदर अब मेरे कैन्वास पर है
मैं चाँदनी रात में
सहजता से कैन्वास पर बिल्ली के उतरने का उत्सव मना रहा हूँ
और महिनों से दीवार पर अकेली ऊब चुकी मोनालिसा
बिल्ली को देख मुस्करा रही है।

***

डी के 2- 166/18, दानिशकुंज
कोलार रोड भोपाल- 462042
मोबाइल 8989569036
ईमेल raj_nagdeve@hotmail.com

डॉ. संगम वर्मा की कविताएँ

सुख का आयतन

चिंदी - चिंदी सुख होता है
सहेजा जाता है तो और बढ़ जाता है
न नपा तुला होता है, न परिमाण में न गणित होता है, न परिसीमन में
बस क्षणिक होता है, क्षणभंगुर की तरह
जीया जाया जाना चाहिए
पिपासा नाम की जो चीज़ होती है
वो हमें जीवित रखती है।
इसलिए हमें चिंदी-चिंदी सुख सहेजना चाहिए।
सुख का आयतन
दु:ख के आयतन से कहीं क्षणिक होता है
ये क्षणिक ही दु:ख के आयतन को भेद सकने में कारगर होता है।
सुख हैं, सब देय हैं,
हिमालय, देवालय, और
शिवालय, कैलाशालय
एक ही हैं
इसी चिंदी-चिंदी सुख के
उत्तराधिकारी हैं।
सहज नहीं पाया जा सकता इन्हें
ख़ूब खपना, तपना पड़ता है
पार्वती भी तपी थी, अपने शिव के लिए
सीता भी तपी थी, अपने स्व के लिए
विचारों के
ज़द्दोज़हद के बीच, कश्मकश के बीच
जो मंथन होता है,
तभी हलाहल का कलश निकलता है
फिर से मंथन होता है
तब कहीं जाकर अमृत कलश निकलता है
जो हलाहल को निगल लेता है
पर मथना ज़रूर होता है
सुख का आयतन मथना है
मन्तव्य-गन्तव्य का
सुंदर सोपान मंथन है
जब तलक़ मंथन होता रहेगा
सारे तीर्थांकन समीप हैं
अन्यथा कोसों दूर हैं।

***

ध्वनियों का आशियाना

जिन ध्वनियों ने
अपना आशियाना नहीं पाया
वो धड़कन बन धड़क रही हैं
दिल के पहाड़ों की गोद में
ज़ब्त नहीं किया जा सकता उन्हें
क्योंकि प्रकृति स्वतन्त्र होती है
बस गूँजती रहती हैं
स्व में और झँकृत करती रहती हैं
सूनेपन को टटोलती रहती हैं
रोयाँ रोयाँ इस क़द्र मुखरित होता है
कि समस्त नेगेटिव वाइब्स के कालेपन की
मलिनता का दोहन कर देती हैं
और तिलांजलि देकर
शंखनाद की ध्वनि की तरह
नि:सृत होती हैं
ये ध्वनियाँ जैसे पौ फट रही होती है जंगल में
ओस की बूँदों की ताज़गी के साथ
गोचारण करते हुए
कृष्ण की मनमोहक बाँसुरी के
मृदु स्वरों के ताल के साथ
ये छोटे-छोटे दिल
ग्लोबल गाँव का देवता हुआ जाता है।
जीवन के ककहरा से लेकर
असीम ससीम के भेद को
जानने को आतुर ये ध्वनियाँ ही
अल्पप्राण महाप्राण के दूरस्थ में

मध्यस्थ का बाँध बनाते हुए
संगम(अनुतान) पैदा करते हैं
और प्रेम की अमरबेल को सींचते हैं
सिसकियों से बाहर भी ये ध्वनियाँ
अपना स्व खोज लेती हैं
बिखर जाने के बाद जो कम्पन
देर तलक़ शरीर को झँझोड़े रखता है
बोझिल सा महसूस करने लगता है
अन्यमनस्क सा होकर
रात की कालिमा के कोहरे में फूट-फूट कर
अपना मार्ग प्रशस्त कर लेता हैं
और फिर हवा के झोंके के साथ
ऐसे लहलहाता है
जैसे की कोई पकी हुई फ़सल
पकने से पहले लहलहाती है
और कोई निर्जन से टीले पर
ज़ोरो से पुकार कर नाम लेता है
दिशाएँ गूँजती रहती हैं इसलिए ज़रूरी है
अपने दिल के किवाड़ खुले रखने के
बन्द किवाड़ों में तो
साँस भी दम घोंट देती है।
अगली बार जब भी किवाड़ बन्द हो
तो उसे दोनों हाथों से इस तरह खोलें
जैसे उत्तरा ने गर्भ धारण किया था।
जैसे बली ने शीश झुकाया था।
जैसे कोई पेड़ छाया देता है।
आप भी छायादार और घना पेड़ बनें
औरों को सुख दें, बिना किसी मन के।

***

संपर्क: सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
पी जी जी सी जी, सैक्टर-42, चण्डीगढ़
ई-मेल: sangamve@gmail.com
मोबाइल:094636-03737

शिव कुशवाहा की कविताएँ

धरती पर उतरता हुआ चाँद

आकाश के बीचों-बीच
चाँद का उतरता हुआ रंग
रक्तिम आभा से
परिणत हो जाता है
गहरे स्याह रंग में।

झिलमिलाते हुए तारे
मद्धिम रोशनी में
अंतिम किरण की तरह
नहीं छोड़ना चाहते
आकाश का स्थाई कोना
गहराती हुई रात
तब्दील हो जाती है एक युग में।

चाँद और तारों के ठीक नीचे
जागते हुए कलमकार
बनाते हैं कल्पना की तूलिका से
बिम्बों का सहज छविचित्र।

जैसे रात अपनी कालिमा में डूबकर
उतर आती है धरती पर
वैसे ही कलमकार
गढ़ता है नए प्रतिमान
समय की बालुका पर चलकर
वह पहुँच जाता है
चाँद की सतह के ऊपर।

धरती पर उतरता हुआ चाँद
लेकर आता है
अपने साथ अनेक भाव
जिनमें डूबता - इतराता है
हमारा पूरा परिवेश...

***

यात्राएँ

यात्राएँ
होती हैं जीवन पर्यंत
आना जाना लगा
रहता है..
फिर भी लोग-
ठहरकर नहीं देखते
शायद कोई इंतज़ार कर रहा हो
अप्रत्याशित आशाओं के बीच
जो हमारा होना चाहता है
इन यात्राओं की तरह...

***

शहर की तलाश

बंजर होते हुए रास्ते
सिकुड़ती हुई तंग गलियों में
रेत की मानिंद
फिसलती ज़िंदगी के दरम्यान
फासला कदम-दर-कदम
नाप ही लेते हैं
लेकिन अभी भी
हमें तलाश हैं
एक मुकम्मल शहर की...

***

स्याह पन्ने

यात्रा में बैठे हुए
निहारता हूँ जब
पेड़ की नाचती शिखाएँ
घूमती हुई दिखाई है
पूरी धरती
एक क्षण के लिए
उतर जाता हूँ
अंतस की गहराइयों में।

पीछे छूटते जाते हैं लोग
आगे चलती जाती है मंज़िल
खो जाते हैं
ज़िंदगी के स्याह पन्ने
अदृश्य मन के किसी कोने में
बनते मिटते हैं
अनन्त बिम्ब।

फ्लैशबैक शैली की मानिंद
उभर आतीं विस्मृत स्मृतियाँ
और धीरे-धीरे
तैरने लगती है
अंतस्तल में
जीवन की धुँधली तस्वीर।

***

विचारधाराएँ

अजस्र जल धारा की तरह
प्रवाहित रहती हैं
विचारधाराएँ
फूटता रहता है उनका उत्स

बनता रहता है
वैचारिक उर्वर धरातल।

विचारधाराएँ
खत्म करने के बरक्स
उभरने लगती हैं तेज़ी से
जिस तरह नैसर्गिक धारा को जबरन बाँधने पर
भरभराकर गिर जाते हैं बाँध।

दहशती बयार में
चिंगारी की मानिंद
होती हैं विचारधाराएँ
धीरे-धीरे हवा के रुख से
सुलगती रहती हैं
अंदर ही अंदर...

***

समय के सच के साथ

विचारधाराओं की
टकराहट से उपज रहे
खतरनाक माहौल के बीच
दरक रही हमारी कौमी एकता
और निरन्तर
चल रहे द्वंद्व में पिस रही
दो पीढ़ियों की
अपार सम्भावनाएँ।

सिमट रहे
मानवीय संवेदना के दायरे
बदल रहे परिदृश्य में
साम्प्रदायिकता
रंगों में डूबकर
बन गई है पहचान।

अंदर ही अंदर
हो रहे उथल- पुथल को
समझना होगा सिरे से
राजनीतिक षड्यंत्रों के
यथार्थ को समझते हुए
अब समय के सच के साथ
बढ़ना होगा आगे।
पहचानने होंगे
नीति-नियंताओं के कुचक्र
जो सुलगाना चाहते हैं
समाज के बीच का
आपसी सौहार्द
दहशत की भयंकर लौ में
झोंक देना चाहते हैं
देश की सांस्कृतिक विरासत..

***

संपर्क: श्री विष्णु अग्रवाल, लोहिया नगर, गली नं- 2, जलेसर रोड़, फिरोजाबाद (उ प्र), पिन- 283203
ई-मेल: shivkushwaha.16@gmail.com
मोबाइल: 07500219405

नंदा पाण्डेय की कविताएँ

पुनरागमन

आज की दोपहर
कितनी तारी रही हम पर
कि दूर होकर भी तुम
बहुत नज़दीक आ गए थे
आज तुम्हारे शब्दों की कंपन
और मेरी मन्नतों के पथराए होंठ
चीख- चीख कर अपने होने की
गवाही दे रहे थे
आज उदासी के हक में
बोलना मना था
आज ठहर कर सोचना और
पीछे मुड़कर देखना भी
मना था
तुमको आँसू गंवारा न था
और मैं आरज़ुओं की बरसात में
दरिया बनी जा रही थी
इससे पहले कि मैं
तुम्हारे प्रति कृतज्ञ होती
दर्प की एक खनक
रह-रह कर खनखना रही थी
मेरे भीतर ही भीतर
आज आँखों में सपने नहीं
महत्त्वकांक्षाएँ चमक रही थीं
और मन में बेचैनी की जगह
तसल्ली ने ले ली थी
आज अपनी तमाम कोशिशों के
बावजूद तुम्हारे अंतहीन
प्रेम की भंगिमाओं के बीच
लताओं सी लिपटी मैं
उदित और अस्त होती रही
अब जब ढलती हुई शाम के साथ
सब लौट रहे हैं
तो क्या मुमकिन नहीं
तुम्हारा पुनरागमन.....!!!

***

अलविदा

साँझ का मटमैलापन और
अर्से बाद अंतर्नाद करता हुआ
अंतर्मन .....
आज जहाँ
दूर कहीं मंदिर की
घंट-ध्वनियाँ और
आरती नगाड़ों के बीच
आत्मपीड़ा और आत्महीनता की
विद्रोहात्मक परिणति में
डूबता जा रहा है

वहीं तेज़ाब से खौलते
मन के समुद्र में
निरंतर जल रही भावुकता
चिथड़े-चिथड़े हो कर
उड़ती जा रही थी.....और
सारी संवेदना पिघल कर
मोम बनती जा रही है

आत्मविश्लेषण की इस
दोधारी तलवार से
जब-जब तुम्हारे नाम की
लकीरों को काटना चाहा
अनगिनत नई लकीरों
ने जन्म ले लिया...

जाने किस बाबत
घृणा और प्रेम पर सोचते हुए
बाँध लिया पत्थर
खुद की उड़ान पर

कस दिया फंदा
अपनी ही आत्मा के गले पर

आज मीरा के हृदय की
बेधक पीड़ा
मन को बेचैन तो कर रही
पर पूरी तरह सहभागी
बनने से इंकार करती है

आज हृदय समंदर
संदेह की झाग से
अटता चला जा रहा है
कितना कुछ
जलकुंभी की तरह
फैलता हुआ अतीत की
सारी घटनाओं को
निगलता जा रहा है
ऐसे में क्या खोजना और क्या पाना

आज प्रश्न ??
दु:ख से नही आश्चर्य से है
क्या जीना चाहिए ऐसे भ्रम को
जिस पर स्वयं को ही विश्वास न हो...?

अब मातम में डूबी और
कृपा पर जीती हुई
अपहरित की गई चाहनाओं के पार
जाने का आसान रास्ता होगा.....'अलविदा'

***

संपर्क: फ्लैट नंबर - 2बी सूरज अपार्टमेंट
हरिहर सिंह रोड मोरहाबादी रांची
झारखंड, पिन - 834008
मोबाइल : 7903507471

सलिल सरोज की कविताएँ

शब्द

अगर इतने ही
समझदार होते
तो खुद ही
गीत,कविता,
कहानी,नज़्म,
संस्मरण या यात्रा-वृतांत
बन जाते

शब्द
बच्चों की तरह
नासमझ और मासूम
होते हैं
जिन्हें भावों में
पिरोना पड़ता है
एहसासों में
संजोना पड़ता है
एक अक्षर
के हर-फेर से
पूरी रचना को आँख
भिगोना पड़ता है

जैसी कल्पना मिलती है
शब्द,बच्चे की भाँति
वैसा रूप ले लेता है
जैसी भावना खिलती है
वैसा धूप ले लेता है

शब्द और बच्चे
एक से ही हैं
श्रेष्ठ कृति के लिए
दोनों को
पालना पड़ता है
समय निकाल के
संभालना पड़ता है
तब जाके
एक अदद इंसान
की तरह
एक मुकम्मल
रचना तैयार होती है।

***

जाना

जाना
कभी उन गलियों में
जहाँ तुम्हें मनाही है
पर तुम जाना
और सच देखना
जो मनाही की आड़ में
छिप जाता है

उसे
रंडीखाना,वेश्यालय,
कोठा और पता नहीं
क्या-क्या कहते है...
तुम नाम में मत फँसना
वरना सच को हरा के
झूठ यहीं जीत जाएगा
यहाँ जिस्म बिकता है
पूरा या हिस्सा
दोनों
ग्राहक और पैसा
बहुत कुछ
तय करता है
जैसे कि
सिर्फ छाती चाहिए
या होंठ
या जाँघ
या नितंब
या पूरा
जिस्म का लोथरा
एक घंटा चाहिए
या आधा
या पूरा दिन
अकेला चाहिए
या किसी
और के साथ
अकेली चाहिए
या कई
एक साथ
फर्श पे चाहिए
या पलँग पर
कोठरी में चाहिए
या एयर-कंडीशन में
बत्ती जला के चाहिए
या बुझा के
अधनंगा बदन चाहिए
या नंगा चाहिए

तमाम
समीकरणों में
जिस्म के पीछे
कोई माँ
जिसकी बेटी

खिड़की से
रोज़ माँ को
बिकती देखती है
कोई बहन
जिसकी राखी
किसी भी को नहीं
पहचानती है
कोई बीवी
जो शौहर से
काँपती हो
कोई बेटी
जो बाप के डर से
भागती हो
और
एक औरत
जो समाज
के दायरे में
रिवाज़ के ज़ंजीर
में लिपटी
रोज़ कलपती है
कलस्ती है
रोती है
चिंघारती है
और वक़्त-बेवक़्त
बेआबरू होके
मरती है
तुम उससे मिलने
और जानना सच
इस सभ्य समाज का
जो औरतों को
पूजता है
कहीं सावित्री तो
कहीं सीता खोजता है
और देवी की कल्पना में
मूर्तियाँ तराशता है
और शाम ढलते ही
उसी बदनाम गली
में जाता है
जहाँ
तुम्हें जाने की
मनाही है।

***

बातें

घर के काम-काज से
निपट कर
औरतें
दोपहर में
क्या बातें करती होगी
शायद
अपने पतियों की तंगी हालत
बच्चों की पढ़ाई का खर्चा
ससुर का इलाज
सास के ताने
ननद के बहाने
देवर के सताने
के बारे में ही
बातें करती होंगी
पर
जो
नहीं कर पाती होगी
वो है
अपने शरीर का भट्टी होते जाना
अपने सपनों का राख बनते जाना
अपने अरमानों को खाक करते जाना
पर वो ऐसा क्यों नहीं सोच पाती
उन्हें ''शिक्षा'' दी गई है
तुम नारी हो
तुम बलिदान हो
तुम्हें भूखी रहना है
हर दुख सहना है
और घुट के
एक दिन मर जाना है
और इस ''शिक्षक'' समाज की
हेडमास्टर भी नारी है
ये बिडम्बना बहुत भारी है
इसी ऊहापोह में
नन्हीं बच्चियों को
एक बार फिर
भट्टी बनाने की तैयारी है।

***

है साहस तो

है साहस तो
बढ़ना कभी
औरत के देह
से भी आगे,
जिसकी अस्थि-मज्जा तक
तुम भींच चुके
देह की पिपासा
के बाहर स्त्रियों
का मन है
जहाँ तुम्हारे कदम
लड़खड़ा जाते हैं
क्योंकि
तुम्हें वहाँ
तुम्हारे खोखले आदर्शों
को चुनौती मिलती है
पर एक बार
ज़रूर घुसना
उस मन में
तुम्हें वहाँ एक
अँधा,गहरा,कुआँ मिलेगा
जिसमें अनगिनत सपने
अरमान, एहसास
कीड़े-मकोड़े की तरह
कुलबुला रहे होंगे
उनको कभी धूप नहीं मिली
मर्दों के अभिमान के
नीचे कभी
वो पनप नहीं पाए
उग नहीं पाए
खिल नहीं पाए

तुम्हें कुछ देर
शर्म तो आएगी
ज़्यादा संवेदनशील हो
तो ग्लानि भी आएगी
और गर इंसान हो
तो शायद रोना भी आएगा
पर कुछ ही देर बाद
जब तुम्हारा
पौरुष हावी होगा
तुम मुँह फेर कर
चल दोगे
और
स्त्रियों के मन की
जिस यात्रा पे तुम निकले थे
हमेशा की तरह
अधूरी ही रह जाएगी।

***

संपर्क: बी 302, सिग्नेचर व्यू अपार्टमेंट,
मुखर्जी नगर, नई दिल्ली
ई-मेल: salilmumtaz@gmail.com
मोबाइल: 9968638267

नीलम पांडेय नील की कविताएँ

स्वप्न चटक बैंगनी

स्वप्न, ...चटक बैंगनी
जंगली फूल से खिलते हैं
और असमय ही
झर जाते हैं .....
झरे हुऐ फूल स्मृतियों में
दुख के टीले बनाते हैं
इंसान भी इन्हीं टीलों से
खुशियाँ बीन लेता है
बेवजह मुस्कराने की, वजहें भी।
तब तुम्हारी दोनों खुली
हथेलियाँ
बटन टाँकती है
आकाश के कालर पर
तुम बेहिसाब से
जीवन का हिसाब
लगाते हुऐ थक कर
बंद कर देती हो
जीवन की खाते खतौनियाँ
और राज़ की चाबी
ऊछाल देती हो
पहाड़ की गोद में।
उम्मीदों को
एक लिफाफे में बैरंग
बिना टिकट, बिना पते भेज कर
तुम विश्राम चाहती हो।
लेकिन तुम्हारी आँखों के कोरों में
बची रह गई है...
एक आशा
कई गज ऊँची सीढ़ियाँ
बनाकर आकाश से
तारे तोड़ने की कोशिश में है।
लेकिन तत्क्षण धरती धंसने लगी
क्या करोगी अब
दो रास्ते हैं
कोशिश करो कि धरती
तुम पर रहम करे
या उस आशा को धरती पर छोड़ दो
क्या पता उग आऐ कभी
कोई चटक बैंगनी सा फूल .....

***

घौंसलों सा भविष्य

कहूँ,
पर सोचूँ न कतई भी
कोई ऐसी सी बात बता ना मन
कोई फरेब,
कोई ऐसा गुर भी बता ना
लिखूँ न मन की सतह !
वे जो पढ़ते हैं मेरे अनाम
असफल वाक्यांश और
कुछ बेस्वाद शब्द भी
यूँ ही.... या कुछ भी नहीं है!
कोई लेखनी बता कि मैं लिखूँ
बिन कहा सा कोई सारांश
जहाँ भीगता हो आदमी,आदमी
या कोरे कागज़ सा पढ़ा जा रहा हो
उम्रभर !
मैं मरी हुई जीवित लाशों का सच
न सही किन्तु कह सकूँ उसको
जो लिख नहीं रहा
पर बुन रहा है
अपनी आवाजाही को समय
की दहलीज़ पर बिन कहे ही !
सच तो यह हैं ना।
उस वक्त,
मैं वर्तमान न लिखूँ
लिखती रहूँ,
पेड़ों में खाली रह गए
बया के घौंसलों सा भविष्य !

क्यों कि मेरी संवेदनाओं के जल में
अनगिनत बार मरी हुई मछलियाँ
जीवित होती रहती हैं और कभी
मरते हुए जीने का उपक्रम भी करती हैं।
कुछ लोग एक सदी तक
हरी घास में छिपे मच्छरों की तरह
पीछा कर काटते हैं आदमी को
उसकी सोई हुई महत्त्वाकांक्षाओं को भी !
आज वे समय की दहलीज़ पर
धूमिल हो गए हैं
क्योंकि घास का सूखना तो तय है
उन्हें छिपने के आसरे तलाशने थे
आख़िर हरापन कब तक साथ देगा।

***

सपने मेरे पैरों के तलुवों में

मेरे रक्त में संवेदनाओं की
सुखी छिलकियाँ बची हैं
अत: रक्त ठंडा है ....
रक्त बर्फ है
वैसे कहते हैं बर्फ की तासीर
बहुत गर्म होती हैं
अत: गर्म खून वालो,
कभी महसूस करना
बर्फ आग से पहले पानी में
पिघलती है.....
इसीलिए अब मच्छर मेरे
आसपास नहीं फटकते
जो मीठे रक्त के शौकीन थे
क्योंकि मुझमें
खारा नमक जो घुल गया है
जैसे मुझे
अब रात में,
सपने नहीं आते हैं
बस, नींद ही आती है .....

शायद ! सपने मेरे पैरों के
तलुवों में चले जाते हैं
तभी तो रात भर पैरों में
खवाई होती है।
पर मैं तो नींद में होती हूँ।
क्या पता नींद मुझे ठगती है
या मैं नींद को
जो भी हो
दोनों समय पर जाग जाते हैं
दिन भर दिहाड़ी में
नींद मेरा और
मैं नींद का पीछा करती हूँ
दोनों को चिरंतन सोने की ललक है

***

संपर्क :
ईमेल: neelamrdi@gmail.com
मोबाइल:9411712136

गीत

संदीप 'सरस' के गीत

आमंत्रण होगा

आपस में गलबहियाँ लेकर
ठुमक चले हैं अक्षर-अक्षर

निश्चित ही रचनाकारों का
भाव भरा आमंत्रण होगा।
आज सृजन के राजभवन में
गीतों का अभिनंदन होगा।

संवेगों ने स्वागत गाया,
आवेगों ने चरण पखारे।
और उमंगों ने आगे बढ़,
सौ-सौ मंगलगान उचारे।

हुई घोषणा है सम्मानित
उर का हर स्पंदन होगा।
आज सृजन के राजभवन में
गीतों का अभिनंदन होगा।

संशय का प्रवेश प्रतिबंधित,
पहरे पर विश्वास अटल है।
संवेदी अनुभूति गहन है,
अंतर का उल्लास अटल है।

निश्चल भावों के आँगन में
प्रियता का अभिमंत्रण होगा।
आज सृजन के राजभवन में
गीतों का अभिनंदन होगा।

अन्तस् की अभिव्यक्ति प्रखर है,
मृदुता का भावातिरेक है।
भावव्यंजना की रोली से
गीतों का राज्याभिषेक है।
साँसों से अनुप्राणित स्वर का
शब्दों में उच्चारण होगा।
आज सृजन के राजभवन में
गीतों का अभिनंदन होगा।

***

सपनों का मर जाना अच्छा

सपने तो सपने होते हैं
लाखों हो चाहे इकलौता,
जो सपना सच हो न सके
उस सपने का मर जाना अच्छा

क्या चिड़ियों के उड़ जाने से
आँगन नहीं मरा करता है।
क्या सपनों के मर जाने से
जीवन नहीं मरा करता है।
उन कलियों की व्यथा टटोलो
जिन्हें कंटकों ने ही छेड़ा,
क्या पुष्पों के मुरझाने से
उपवन नहीं मरा करता है॥

हाँ कुछ पुष्प हुए उपवन में
जिनमें रची सुवास नहीं है,
ऐसे पुष्पों का खिलने से
पहले ही मुरझाना अच्छा॥

मन की पीड़ा कहें अधर ना,
यह भी कोई बात हुई है।
जीवन हो जीवन्त अगर ना,
यह भी कोई बात हुई है।
टुकड़ा-टुकड़ा जीने को मैं
जीना कैसे कह सकता हूँ,
थोड़ा जीना थोड़ा मरना
यह भी कोई बात हुई है॥

बूँद-बूँद से तृप्ति मिली
तो प्यास बहुत शर्मिंदा होगी,
फिर उस प्यासे का पनघट से
प्यासा ही घर आना अच्छा।

शब्द शब्द से संवादों का
गठबंधन अच्छा लगता है।
सच कहता हूँ कविताओं का
अपनापन अच्छा लगता है।
मेरे गीतों में जीवन का
आँसू आँसू अभिमन्त्रित है,
वेदों के मन्त्रों से ज़्यादा
गीत मुझे सच्चा लगता है॥
जीवन की अनुभूति हमारे
गीतों में अभिव्यक्त न हो तो,
फिर जीवन के हर पन्ने का
कोरा ही रह जाना अच्छा॥

***

मरण श्रेष्ठ है

मुखर वेदना को सहेजकर
जीना भी कैसा जीना है,
जीवन यदि जीवन्त नहीं हो,
तो जीवन से मरण श्रेष्ठ है॥

बाधाओं के सम्मुख कैसे,
नतमस्तक हो झुक जाएँगे।
थककर चूर हुए भी तो क्या,
हार मानकर रुक जाएँगे॥

पथ के कण्टक पुष्प बनाना,
पौरुष का परिचय होता है,
पथ को जो गौरव दे पाए,
मानूँगा वह चरण श्रेष्ठ है।

जनहित जगहित मानवता से,
बढ़कर कोई धर्म नहीं है।
भूँखे को रोटी देने से,
बेहतर कोई कर्म नहीं है।

व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व अमर है,
हम बदलेंगे युग बदलेगा,
जीवन कोअमरत्व सौंप दे,
ऐसा शुभ आचरण श्रेष्ठ है।

मंजिल से पहले रुक जाना,
यह यात्री का काम नहीं है।
जीवनपथ पर चलना जीवन,
पलभर भी विश्राम नहीं है।

ठहरा जल सड़ाँध देता है,
बहते रहना ही जीवन है,
हरक्षण जीवनगान सुनाती
सरिता का अनुसरण श्रेष्ठ है।

***

संपर्क: मोहल्ला-शंकरगंज,पोस्ट-बिसवां,
जिला-सीतापुर(उ प्र)-पिन-261201
मोबाइल:9450382515, 9140098712
ई-मेल:sandeep.mishra.saras@gmail.com

भाषांतर

सिंध की लेखिका, अतिया दाऊद की कविताओं का हिंदी अनुवाद

अनुवाद : देवी नागरानी

अन्तहीन सफ़र का सिलसिला

शहर भंभोर के मंजर में
तेरे मेरे बीच में जो सफ़र था
वो मैं न कर पाई
पहाड़ मेरे जज़्बों के आड़े
मोम की मानिंद थे
तेरे मेरे बीच में थी एक लकीर
वह मैं उलाँघ न पाई
बिरह की आग मेरे लिए शबनम थी
तुम्हारी याद की चिंगारी को
मैं बुझा न पाई
प्रीत का पंछी तुम बिन उदास
मेरे हाथों में निढाल-निढाल
चाहने पर भी उड़ा न सकी!

***

आत्मकथा

सखी तुम पूछती हो कि
मैं जीवन कैसे गुज़ारती हूँ
शादी के बाद 'लिखती' क्यों नहीं?
मैं फरमाबरदारी की टेस्ट-ट्यूब में पड़ी
'पारे' की तरह मौसमों की मोहताज हूँ
जन्म से माँ वफ़ा की घुट्टी पिलाती आई है
जो ख़ामोश लिबास की तरह वजूद से चिपटी है
दुखों का तापमान बढ़ने पर भी
टेस्ट-ट्यूब तोड़कर बाहर न निकल पाई हूँ
मेरा घर ऐसा जादुई है
कि मैं खुद को भूलकर मशीन बन जाती हूँ
समूचा व्यवहार मैं इसके चुटकी बजाने पर कर डालती हूँ
अपने भीतर झाँककर जब खुद को देखती हूँ
तो घर मेरे लिए दलदल बन जाता है
मैं तिनके की सूरत में रेत की बवंडर में फेंकी गई हूँ
और वक़्त के कदमों में लोटती हूँ!
दुनिया में आँख खोली तो मुझे बताया गया
समाज जंगल है
घर इक पनाहगाह
मर्द उसका मालिक और औरत किराएदार!
किराया वह वफ़ादारी की सूरत में अदा करती है
मैं भी रिश्ते-नातों में खुद को पिरोकर
किस्तें अदा करती हूँ!
सखी, मैं इसीलिए नहीं लिखती, क्योंकि
मैंने सभी जज़बात एकत्रित करके
वफ़ादारी के डिब्बे में बंद कर दिए हैं
मेरी सोच, बुद्धिमानी और
ढेर सारी इकट्ठी की हुई किताबों को दीमक चाट रही है
मैं अपने शौहर की इज़्ज़त और अना का प्रमाण पत्र हूँ
जिसे वह हमेशा तिजोरी में बंद रखना चाहता है!

***

बर्दाश्त

बर्दाश्त के जंगल में
मेरी आँखों से
तेरी याद की चिंगारी गिर पड़ी
खुशियों के मेले में
दिल को, फिर नए ग़म की
भनक पड़ गई
तेरे मेरे दरमियान आसमाँ है फ़ासला
देखते-देखते नज़र थक गई
सहरा में भटकती हिरणी की प्यास की तरह
प्रीत मरती जीती रही!

***

चादर

मेरे किरदार की चादर
सदा ही अपर्याप्त
जितनी आँखें मेरे बदन पर गढ़ी
वहाँ तक चादर मुझे ढाँप न पाई
मेरे किरदार की चादर हमेशा से मैली
धोते-धोते मेरे हाथ थके हैं
जितनी ज़बाने ज़हर उगलती हैं
उन्हें धोने के लिए उतने दरिया नहीं है मेरे देश में
इस चादर में हमेशा छेद
सात संदूकों में छिपाऊँ तो भी
आपसी मतभेद के आक्रमणकारी चूहे कुतर जाते हैं
इस चादर को हमेशा ख़तरा
रीति-रस्मों के किलों में हमेशा इस पर पहरा
तो भी मेरे सर से खिसकती रहती है
रौशन-रौशन नैनों वाली मेरी बेटी
अँधेरे के ऊन से
ऐसी चादर तुम्हारे लिए भी बुनी जा रही है
जिस में खुद को समई करने के लिए
वजूद को समेटते हुए सर झुकाना होगा
अगर मेरे थके-थके हाथ वह चादर तुम्हें पेश करें
अपने पैरों तले रौंद डालना
रीति-रस्मों के सभी पहाड़ फलाँग जाना
मेरा हाथ पकड़कर मुझे वहाँ ले जाना
जहाँ मैं अपनी मर्ज़ी से
ज़िंदगी से भरपूर साँस लूँ
तुमसा एक आज़ाद कहकहा लगाऊँ!

***

संपर्क : 241 Mawbey Street,
Woodbridge,
NJ 07095
ई-मेल : dnangrani@gmail.com

नव पल्लव

अदिति मजूमदार

वह कमज़ोर नहीं....
ट्रेन की सूचना मिलते ही
वह अपने बेटे को ले तैयार थी।
अपनी फटी पुरानी साड़ी को समेटे
प्लैटफॉर्म पर बेचैन नज़रों से देख रही थी।
अपने आठ साल के पुत्र का हाथ थामे
घर से निकली, पता न था वह क्यों,
कहाँ जा रही थी।
वह बेबस थी, लाचार थी,
लेकिन स्वाभिमानी थी
पति को परलोक गए साल न हुआ था
ससुराल वालों ने सड़क पर ला खड़ा किया था।
एक छोटा सा पोटला,
जो कि उसका संसार था
निकली अपने बेटे के लिए आसमान छूने
मन का अटूट विश्वास उसकी पूँजी थी
नन्हीं उँगलियों को थामे निकल पड़ी थी।
ट्रेन की सीटी पर दिल सहम गया, पर वह ठीक थी?
वह एक स्वाभिमानी माँ थी जो विजय पाना चाहती थी,
अपने हालातों पर, अपनी परिस्थितियों पर...
भीड़ ने जब धकेला, नई स्फूर्ति के साथ विरोध किया, उस धक्के का
चल पड़ी वह अपने नन्हें संसार से
वास्तविक संसार में, संघर्ष करने निकल पड़ी .....
नन्हीं उँगलियाँ थामें, बढ़ चली....
अनजान, बेगानी दुनिया में...
था उसके पास आत्मविश्वास, स्वाभिमान और आस्था
वह कमज़ोर नहीं....

***

संपर्क: 300 Indian Branch Dr., Morrisville, NC-27560
ई-मेल: maditi2001@gmail.com
मोबाइल:9194678486

ग़ज़ल

जय चक्रवर्ती की तीन ग़ज़लें

हमारा आज-कल चर्चा बहुत है
हमारी जान को ख़तरा बहुत है
ज़रा लहज़े में इसके तल्खियाँ हैं
मगर ये आदमी अच्छा बहुत है
कहीं भी जान दे दो या कि ले लो
शहर में इन दिनों सुविधा बहुत है
न पद- पैसा, न कोठी- कार,फिर भी
अजब है शख़्स ये हँसता बहुत है
हमारा दोस्त है वो खास लेकिन -
हमारे नाम से चिढ़ता बहुत है
हटाओ रास्ते से, कौन है ये
गरीबों के लिए लड़ता बहुत है
दबंगों ने दलित को मार डाला
ये कहकर,-ये ससुर उड़ता बहुत है
कहन का फ़न तुम्हारे पास है,तो-
हमारे पास भी थोड़ा - बहुत है

***

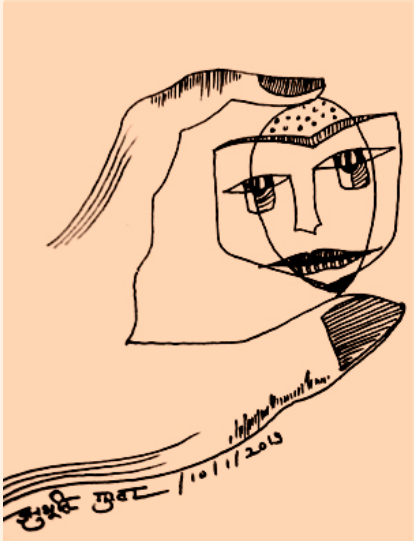

आँखों की नींदों से अनबन
जीवन सारा बेमन - बेमन
सुख का छोर न सदियों पाया
दुख आए सब आनन-फानन
भूखे बच्चों को बहलाते
खाली बर्तन खन खन खन खन
एक गृहस्थी, एक पहाड़ा
कपड़ा-लत्ता राशन-वाशन
पैदा होकर खटना-मरना
हम क्या जाने बचपन-यौवन

***

दर्पन जैसा मन रखता हूँ
सच कहने का फ़न रखता हूँ
फूलों को रखता होठों पर
काँटों पर जीवन रखता हूँ
अँधियारों से टकराने को
उजली एक किरन रखता हूँ
थकता हूँ जब बूढ़ेपन से
आँखों में बचपन रखता हूँ
सपने सच करने की ज़िद में
नींदों से अनबन रखता हूँ

***

संपर्क: एम.1/ 149, जवाहरविहार, रायबरेली-229010
ई-मेल : jai.chakrawarti@gmail.com
मोबाइल: 9839665691

समाचार-सार

राज्य संग्रहालय में आयोजित में 10 वें स्पंदन सम्मान समारोह में रचनाकार सम्मानित

स्पंदन संस्था की ओर से राज्य संग्रहालय में शुक्रवार को 10 वें स्पंदन सम्मान समारोह में हिंदी के जाने-माने कवि और लेखक गोविंद मिश्र की अध्यक्षता में रचनाकारों को उनकी साहित्य साधना के लिए स्पंदन सम्मान से सम्मानित किया गया। स्वागत वक्तव्य एवं संयोजन डॉ. उर्मिला शिरीष, रचनाकारों का परिचय डॉ.आनंद कुमार सिंह व संचालन विनय उपाध्याय ने किया। गोविंद मिश्र ने अपने उद्बोधन में कहा कि स्पंदन जैसी संस्था प्रकाश फैलाने का बड़ा काम कर रही है। साहित्यकार अपने समय को कठिन समझ लेता है,लेकिन प्रतिकूल असर डालने वाली चीज़ें उसे कठिनतम बनाती हैं।

सम्मानित रचनाकार के रूप में बोलते हुए असग़र वजाहत ने कहा कि समाज को आगे ले जाने का कार्य साहित्य और कलाएँ करती हैं, राजनीति नहीं। कलाएँ समाज को परिपक्व करती हैं, लेकिन वर्तमान में संवाद की स्थिति बिगड़ गई है। बिना संवाद के फैसले कर दिए जाते हैं, इसलिए वे फैसले ग़लत होते हैं। महानता के लिए उदारता बहुत ज़रूरी है। लेखन की बुनियादी बात यह है कि यह विशिष्ट है, यदि लेखन विशिष्ट नहीं है तो वह लेखन नहीं है। साहित्य के द्वारा ही शिक्षा का स्तर सुधारा जा सकता है। बदलते परिवेश में पर्यावरण को बचाना मुश्किल हो रहा है फिर साहित्य को बचाना तो और मुश्किल होने वाला है। हमेशा ऐसी चीज़ें पढ़ें जो आपको पढ़ने में कठिन लगें, तभी तो आपकी बौद्धिक चेतना

विकसित होगी।

असग़र वजाहत को निरंतर सृजनशील वरिष्ठ साहित्य साधना के लिए स्पंदन कथा शिखर सम्मान,उदयन वाजपेयी को कृति सम्मान, प्रेम जनमेजय को व्यंग्य यात्रा के लिए साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान, आलोक चटर्जी को रंगकर्म के लिए कला सम्मान, महेश दर्पण को आलोचना कर्म के लिए आलोचना सम्मान, पंकज सुबीर को उपन्यास अकाल में उत्सव के लिए कृति सम्मान एवं थवई थियाम को युवा सम्मान से सम्मानित किया गया।

इस अवसर पर आरंभ- कथापाठ में वरिष्ठ कथाकार मुकेश वर्मा की अध्यक्षता में राजेश जोशी, महेश कटारे, हरीश पाठक, सत्यनारायण पटेल ने कथापाठ किया। राजेश जोशी ने 'मोबाइल झूठ' कहानी के माध्यम से कहा कि इस अद्भुत यंत्र के इजाद से झूठ बोलने के रास्ते तैयार हो गए हैं। अब झूठ भी नैतिकता से परे है। पहले हमारी भाषा में झूठ का बहुवचन नहीं था, नई तकनीक ने हमारी दुनिया से स्पेस छीन लिया। कथाकार हरीश पाठक ने अपनी कहानी 'पतंग' के माध्यम से मुंबई जैसे महानगर की जीवनशैली पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह मुम्बई है। यहाँ किसी को कोई भी काम करने में लज्जा नहीं आती। यहाँ सबके तार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और सबका काम एक दूसरे से ही चलता है। सत्यनारायण पटेल ने बदलते परिवेश को परिलक्षित करते हुए 'पर पाजेब ना भीगे' कहानी पढ़ते हुए कहा कि समय बदल रहा है विकास की गंगा बह रही है और डूब रहा है सुख-चैन। वर्ष बीतते गए और शहरों का जंगल में बदलना जारी रहा। महेश पटेल ने किबाड़ शीर्षक से कहानी पढ़ी। संचालन सुमन सिंह ने किया

***

'सुबह अब होती है...अब होती है... अब होती है...' का मंचन

जयपुर में 27 मार्च को पाँचवे राजरंगम नाट्य समारोह के अंतर्गत 'जवाहर कला केंद्र', के प्रेक्षागृह में और 28 मार्च को 'रंग बताशे' नाट्य समारोह में रवींद्र मंच पर श्री पंकज सुबीर लिखित और श्री नीरज गोस्वामी द्वारा नाट्य रूपांतरित कहानी 'सुबह अब होती है...अब होती है... अब होती है...' का मंचन लहर के सौजन्य से रंगशिल्पी संस्था द्वारा अनुभवी रंगकर्मी श्री तपन भट्ट के निर्देशन में किया गया।

इस नाटक में एक स्त्री के मन की पीड़ा और दबी भावनाओं को विलक्षण ढंग से दर्शाया गया है। स्त्री के पात्र में वरिष्ठ रंगकर्मी श्रीमती भगवंत कौर ने अपने संवेदन शील अभिनय से प्रेक्षागृह में बैठे सभी दर्शकों की आँखें नम कर दीं। युवा रंगकर्मी संवाद भट्ट अपने अभिनय से लोगों का दिल जीतने में सफल रहे। इस नाटक में पहली बार जयपुर के वरिष्ठ रंगकर्मी श्री वासुदेव भट्ट की तीन पीढ़ियों ने काम किया। वासुदेव भट्ट के अलावा वरिष्ठ रंगकर्मी विनोद भट्ट तथा विशाल भट्ट ने भी अपनी भूमिकाओं के साथ न्याय किया। अनुभवी रंगकर्मी राजेंद्र शर्मा राजू , गुरमिंदर सिंह पुरी एवं श्री अनिल सक्सेना 'अन्नी' तथा गुलज़ार जी ने क्रमश मंच व्यवस्था ,प्रकाश व्यवस्था और संगीत में विशेष योगदान दिया।

जयपुर के वरिष्ठ नाट्यकर्मियों और साहित्यकारों द्वारा श्री पंकज सुबीर का सम्मान किया गया। श्री पंकज सुबीर ने कहा कि अपने द्वारा रचित काल्पनिक पात्रों को सामने साकार होते देखना एक न भुलाए जाने वाला अनुभव रहा।

***

डॉ. नुसरत मेहदी के दो काव्यसंग्रहों का विमोचन

सबरस अकादमी और शिवना प्रकाशन के संयुक्त तत्वावधान में दिनाँक 31मार्च 2019 को शाम 5 बजे भोपाल के राज्य संग्रहालय में सुप्रसिद्ध लेखिका और शायरा डॉ. नुसरत मेहदी की उर्दू-हिंदी की दो पुस्तकों ''हिसारे ज़ात से परे'' और ''फ़रहाद नहीं होने के'' का विमोचन सुश्री अनुराधा शंकर, अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक के हाथों से हुआ। कार्यक्रम में वरिष्ठ साहित्यकारों, आलोचकों, उपन्यासकारों, कहानीकारों, एवं शायरों में श्री मुज़फ़्फ़र हनफ़ी, दिल्ली डॉ. ख़ालिद महमूद, दिल्ली श्री असग़र वजाहत दिल्ली डॉ. नोमान ख़ान, श्री ज़िया फ़ारूक़ी, श्री इक़बाल मसूद एवं श्री पंकज सुबीर द्वारा दोनों पुस्तको पर चर्चा की गई एवं अपने विचार प्रकट किए गए।

सुश्री अनुराधा शंकर अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक द्वारा डॉ. नुसरत मेहदी के काव्य सृजन की प्रशंसा करते हुए कहा गया कि ''नुसरत ने अपनी ग़ज़लों और नज़्मों को स्त्री के जज़्बात ओ एहसासात की अभिव्यक्ति का माध्यम प्रमुखता से और बहुत सशक्त अंदाज़ में बनाया है। इनकी रचनाएँ सम सामयिक होते हुए व्यापक दृष्टिकोण समेटे हुए हैं।''

डॉ. मुज़फ़्फ़र हनफ़ी ने कहा कि डॉ. नुसरत मेहदी की मशशाक़ी और खल्लाक़ी का बहुत पहले से क़ायल हूँ। वो बेहतरीन तखलीक़ी सलाहियतों से मालामाल हैं। उनकी हर ग़ज़ल में एक दो आशआर ऐसे ज़रूर होते हैं जो दामन ए तवज्जोह खींचते हैं।

डॉ. ख़ालिद महमूद ने कहा कि डॉ. नुसरत मेहदी हिंदुस्तान की उन शायरात में से हैं जिन्होंने अपनी एक मख़्सूस पहचान बनाई है हिंदुस्तान की आम शायरात अपने तरन्नुम या मुक्तलिफ़ अंदाज़ से दादो तहसीन हासिल करती हैं, लेकिन नुसरत मेहदी अपने कलाम के बल बूते पर एहले इल्म से और बाज़ोक सामईन से दादो तहसीन वसूल करती हैं, उनका अपना लबो लहज़ा है, अपना अंदाज़ है, और उनके जो तेवर है उन में बड़ी खुद्दारी हे और इल्मी वे अदबी एतेबार से शायस्तगी और मेयार है।

डॉ. नुसरत मेहदी ने कहा कि ''पहले मैं सिर्फ़ स्वान्त: सुखाय के लिए शायरी करती थी लेकिन निश्चित रूप से शायरी मंज़रे आम पर आने के बाद कुछ ज़्यादा खुलती है, और इसके विषयों का विस्तार होता है। इसलिए इसे पुस्तकों में प्रकाशित होकर पाठक तक पहुँचना चाहिए।''

इस सत्र का कुशल संचालन श्री रिज़वानुद्दीन फ़ारूक़ी द्वारा किया गया।

दूसरे सत्र में आयोजित होने वाले मुशायरे में हिंदुस्तान भर से आने वाले जिन नौजवान शायर/शायरात ने अपना कलाम पेश किया उनमें सालिम सलीम दिल्ली, कुमैल रिज़वी दिल्ली, मीनाक्षी जिजीविषा ग़ाज़ियाबाद, अज़हर नवाज़, अब्बास क़मर जौनपुर, हाशिम रज़ा जलालपुरी जलालपुर, ज्योति आज़ाद खत्री ग्वालियर, शाहनवाज़ अंसारी इंदौर, निवेश साहू दतिया, सोहैल उमर, नूह आलम, फ़ाज़िल फ़ैज़, नोमान ग़ाज़ी भोपाल अफ़ज़ल इलाहाबादी, गौसिया ख़ान सबीन ने अपने कलाम से ख़ूब दाद बटोरी।

मुशायरे की अध्यक्षता गौसिया ख़ान सबीन ने की और संचालन श्री शोएब अली खान और श्री नूह आलम ने किया।

कार्यक्रम को भरपूर सहयोग और उत्साह प्रदान किया भोपाल के साहित्यसेवी, लेखक, कलाकार, शायर एवं साहित्यप्रेमी सैयद तहा पाशा, मोहम्मद यूसुफ़ ख़ान, परवेज़ अख़्तर, हमीदुल्ला ख़ान मामू, ख़ालिद ख़ान, साजिद प्रेमी, अयाज़ ख़ान, शोएब अली ख़ान, साजिद हसन, समीनुज़्ज़फर सिद्दीक़ी, मलिक अहमद नवेद, नफ़ीसा सुल्ताना अना, डॉ. मुबारक ख़ान, राकेश सिंह, समर मेहदी, सारा मेहदी।

***

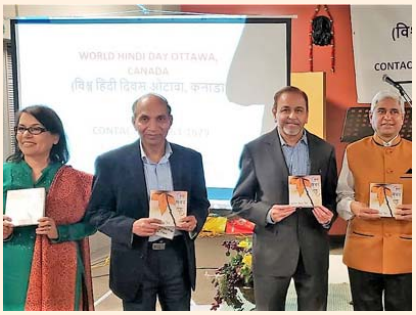

ओटावा में विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर धर्म जैन के कविता संग्रह का विमोचन

कनाडा की राजधानी ओटावा में विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर बोलते हुए सुप्रसिद्ध उपन्यासकार एवं भारत के उच्चायुक्त श्री विकास स्वरूप ने कहा कि लोक तत्व से जुड़ कर ही कोई भाषा विश्व भाषा बन सकती है। यह सरकारी अध्यादेशों से तो संभव नहीं है। हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं संपर्क भाषा के सोपानों से होते हुए अब विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। उन्होंने कनाडा में दिनों-दिन हिंदी के बढ़ते हुए वर्चस्व के प्रति प्रसन्नता व्यक्त की।

इस अवसर पर शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित श्री धर्मपाल महेंद्र जैन के काव्य संकलन 'इस समय तक' का विमोचन किया गया। इस संग्रह में श्री धर्मपाल महेंद्र जैन की अलग-अलग भावभूमि पर लिखी गई कविताओं का संकलन किया गया है। संग्रह में माँ, प्यार, बेटी, शब्द, मेरा गाँव, प्रकृति, सत्ता, आदमी खंडों में कविताएँ संकलित की गई हैं। श्री संतोष के सुमधुर गीतों की प्रस्तुति के साथ सर्वश्री जगमोहन हुमड़, धर्म जैन, सरन घई, अखिल भंडारी, गोपाल बघेल, संदीप त्यागी, सुश्री रश्मि, मीना चोपड़ा, डॉ. शैलजा सक्सेना, कृष्णा वर्मा, डॉ. साधना जोशी, भुवनेश्वरी पांडे, सविता अग्रवाल आदि कवियों के रचना पाठ ने कार्यक्रम को यादगार बना दिया। हिंदी मंच कनाडा के अध्यक्ष डॉ. वीरेंद्र भारती ने इस उत्सव का सफल संचालन करते हुए अपने हास-परिहास से श्रोताओं को बाँधे रखा।

***

हिन्दी भवन में पावस व्याख्यान माला का आयोजन

म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रतिष्ठा आयोजन 17वीं बसंत व्याख्यान माला में ''नारी सशक्तिकरण : गाँधी जी की दृष्टि में'' बा-बापू 150 पर केन्द्रित यह समारोह गाँधी भवन न्यास, मानस भवन और माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय के सहयोग से किया गया। कार्यक्रम में वीरेन्द्र तिवारी रचनात्मक सम्मान से राधा बहन भट्ट को सम्मानित किया गया। प्रभाकर श्रोत्रिय की स्मृति में सम्मान रीतारानी पालीवाल को दिया गया। डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल ''चन्द्र' पुरस्कार रंगकर्मी कमल जैन को दिया गया।

***

एक शाम अशोक मिज़ाज बद्र के नाम भोपाल में सम्पन्न

.

खुशबू कल्चरल एन्ड एजुकेशनल सोसायटी, भोपाल द्वारा स्वराज भवन भोपाल में ''एक शाम अशोक मिज़ाज के नाम'' से किए गए आयोजन में अशोक मिज़ाज को ''आज का शायर'' सम्मान से नवाज़ा गया। उनकी तीन किताबें क्रमश:''मैं अशोक हूँ, मैं मिज़ाज भी,अशोक मिज़ाज की चुनिंदा ग़ज़लें और संमन्दर आज भी चुप है का लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता विजय बहादुर सिंह ने की। मुख्य अतिथि डॉक्टर नुसरत मेहदी थीं। संचालन बद्र वास्ती और शोएब अली खान ने किया।

***

पुरोधा संपादकों की कहानी: हरिवंश की जुबानी

महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में 'पुरोधा संपादकों की कहानी: हरिवंश की जुबानी' कार्यक्रम 27 से 29 मार्च 2019 तक आयोजित किया गया। हरिवंश ने हिंदी विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम के पहले दिन 27 मार्च 2019 की शाम गणेश मंत्री के कृतित्व व व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। 28 मार्च 2019 को हरिवंश जी ने नारायण दत्त और धर्मवीर भारती पर और 29 मार्च 2019 की सुबह प्रभाष जोशी के व्यक्तित्व पर व्याख्यान दिया।

***

'सृजन संवाद' की गोष्ठी में काव्य पाठ

'सृजन संवाद' की नए साल की पहली मासिक गोष्ठी पर काव्य पाठ का आयोजन हुआ। न्यू सीतारामडेरा में आयोजित गोष्ठी में कवियों ने विभिन्न भावों को उकेरती अपनी कविताएँ सुनाई। आभा विश्वकर्मा, अजय मेहताब, प्रकाश, अशोक शुभदर्शी और अखिलेश्वर पांडेय ने अपनी कविताएँ सुनाई। गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. विजय शर्मा ने की।

***

डॉ. जवाहर कर्णावट को 'वैश्विक हिंदी सेवा सम्मान'

वैश्विक हिंदी सम्मेलन तथा एम.एम.पी शाह विमेंस कॉलेज ऑफ कॉमर्स एण्ड आर्ट्स, मुंबई के संयुक्त तत्वावधान में अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी में बैंक ऑफ बड़ौदा के महाप्रबंधक डॉ. जवाहर कर्णावट को हिन्दी के प्रयोग व प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए 'डॉ. कामिनी स्मृति वैश्विक हिंदी सेवा सम्मान' से विभूषित किया गया।

***

'यह भी खूब रही' का विमोचन हुआ

सुप्रसिद्ध कथाकार - नाटककार सुमन ओबरॉय के हास्य व्यंग्य नाटक संग्रह 'यह भी खूब रही' का विमोचन यहाँ देश के जाने माने कवि और वरिष्ठ साहित्यकार राजेश जोशी और मुकेश वर्मा ने किया। पंडित रामानंद तिवारी स्मृति सेवा समिति 'परंपरा' द्वारा आयोजित इस समारोह की विशिष्ट अतिथि वरिष्ठ कथाकार श्रीमती स्वाति तिवारी थीं।

***

''पत्रकारिता कोश'' के 19वें संस्करण का विमोचन

मुंबई - लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड में दर्ज भारत की प्रथम मीडिया डायरेक्टरी ''पत्रकारिता कोश'' के 19वें संस्करण का विमोचन रविवार, 6 जनवरी, 2019 को पत्रकार दिवस पर करीमी लाइब्रेरी, अंजुमन-ए-इस्लाम, मुंबई सीएसटी में संपन्न हुआ। उर्दू जर्नलिस्ट्स एसोसिएशन द्वारा आयोजित इस समारोह की अध्यक्षता निर्भय पथिक के संपादक अश्विनी कुमार मिश्र ने की। इस अवसर पर खाजासाब मुल्ला द्वारा प्रकाशित अल्पसंख्यक आरक्षण रिपोर्ट का विमोचन भी किया गया

***

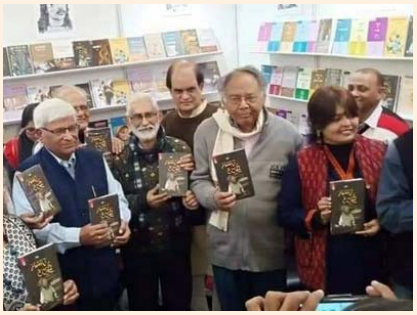

प्रज्ञा के दूसरे कहानी-संग्रह का लोकार्पण और चर्चा

चर्चित कथाकार प्रज्ञा के दूसरे कहानी संग्रह 'मन्नत टेलर्स' का लोकार्पण 12 जनवरी 2019 को विश्व पुस्तक मेले में हुआ। इस कार्यक्रम में गद्यकार और विश्व सिनेमा की विशेषज्ञ लेखक विजय शर्मा, वरिष्ठ कथाकार-सम्पादक महेश दर्पण, व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय, उपन्यासकार भालचंद्र जोशी, परिकथा पत्रिका के सम्पादक शंकर, वरिष्ठ कथाकार रमेश उपाध्याय और हरीश पाठक उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. राकेश कुमार ने किया।

***

'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार' सुधा ओम ढींगरा को

प्रतिष्ठित त्रैमासिक पत्रिका 'कथाबिंब' द्वारा प्रतिवर्ष प्रदान किए जाने वाले कथा पुरस्कारों की घोषणा कर दी गई है। वर्ष 2018 में प्रकाशित कहानियों के आधार पर इस वर्ष का 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार' सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'ऐसा भी होता है' को दिया गया है। यह कहानी 'कथाबिंब' के अक्टूबर-दिसंबर 2018 अंक में प्रकाशित हुई थी। पाठकों के अभिमत के आधार पर इस कहानी को वर्ष 2018 में 'कथाबिंब' में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में चयनित किया गया है।

***

प्रो. गणेश देवी को ''महाराजा सयाजीराव लोक भाषा सम्मान''

बैंक ऑफ़ बड़ौदा ने मुंबई में आयोजित समारोह में पद्मश्री प्रोफ़ेसर गणेश देवी को ''महाराजा सयाजीराव लोक भाषा सम्मान'' से सम्मानित किया। बैंक ने लोक भाषाओं के संरक्षण को महत्त्व देते हुए इसी वर्ष से इस सम्मान की शुरुआत की है। इस पुरस्कार के अंतर्गत 1 लाख की राशि एवं स्मृति चिह्न बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री शांति लाल जैन ने प्रो. देवी को प्रदान किया।

***

''लेखकों की दुनिया'' पुस्तक पर संगोष्ठी

साहित्य के संसार को समृद्ध करने वाले रचनाकारों के जीवन पर प्रकाश डालने वाली प्रसिद्ध कथाकार सूरज प्रकाश की पुस्तक ''लेखकों की दुनिया'' पर विश्व हिन्दी अकादमी द्वारा मुंबई संगोष्ठी का आयोजन किया गया। उन्होंने देश-विदेश के ख्यातनाम विभिन्न लेखकों के रोचक प्रसंगों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। कार्यक्रम का संचालन श्री देवमणि पाण्डेय ने किया।

***

बैंक ऑफ बडौदा में विश्व हिंदी दिवस समारोह का आयोजन

बैंक ऑफ़ बड़ौदा द्वारा विश्व हिंदी दिवस पर' विश्व के प्रमुख देशों की राजभाषाएँ,बहुभाषिकता और हिंदी 'विषय पर व्याख्यान आयोजित किया गया। कार्यक्रम में बैंक द्वारा आयोजित विभिन्न हिंदी प्रतियोगिताओं के विजेता प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया गया। कार्यक्रम का संचालन सुश्री बबीता उपाध्याय (वरिष्ठ प्रबंधक, राजभाषा) ने किया।

***

दुनिया छूट जाए रामा माइक नहीं छूटे रे...

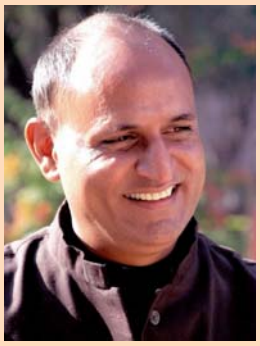

आपने कभी सोचा है कि क्यों ऐसा हो रहा है कि साहित्यिक कार्यक्रमों में दिनों-दिन श्रोताओं की उपस्थिति कम से कमतर होती जा रही है। अब तो साहित्यिक कार्यक्रमों के लिए भी नेताओं की सभाओं की तरह प्रायोजित श्रोताओं की आवश्यकता पड़ने लगी है। कॉलेज में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं को वॉलेंटियर्स के नाम पर कार्यक्रम में बुलाया जाता है और श्रोताओं में बिठा दिया जाता है। श्रोताओं की उपस्थिति जो कम से कमतर होती जा रही है, उसका एक कारण है। कारण है वक्ताओं का माइक से प्रेम तथा हाथ में बँधी हुई घड़ी की ओर पूरे भाषण में एक बार भी नहीं देखना। आप कितना ही अच्छा बोलते हों, मगर सुनने वाले की भी तो एक सीमा होती है। लेकिन इन दिनों हो ये रहा है कि वक्ता अपना पूरा ज्ञान एक ही कार्यक्रम में भड़ास के रूप में श्रोताओं पर निकाल देना चाहता है। वह नहीं देखता है कि सामने बैठे हुए श्रोताओं के चेहरे पर किस प्रकार के भाव आ-जा रहे हैं। वह तो बस अपना भाषण जारी रखे रहता है। साहित्यिक आयोजनों में एक और श्रोता विरोधी घटना यह होती है कि पाँच-छह या कभी-कभी उससे भी ज़्यादा वक्ता मंच पर होते हैं। सारे के सारे मानों श्रोताओं से कोई पूर्व जन्म का बदला निकालने ही आए होते हैं। पता यह चलता है कि जिस कार्यक्रम की समय सीमा डेढ़ से दो घंटे निर्धारित की गई थी, वह कार्यक्रम तीन से चार घंटे तक तो बहुत आसानी से हो ही जाता है। जैसे श्रोता के समय की तो कोई क़ीमत है ही नहीं। ऐसा माना जाता है कि औसतन आप डेढ़ घंटे तक एक जगह पर बैठकर कोई कार्यक्रम देख सकते हैं, इसी कारण फ़िल्मों में भी ठीक डेढ़ घंटे बाद मध्यांतर कर दिया जाता है। लेकिन साहित्यिक कार्यक्रमों में तो मध्यांतर जैसा कोई विकल्प ही नहीं होता। पता है कि मध्यांतर का अर्थ होगा श्रोता का भाग जाना। साहित्य में श्रोता को सज़ा देने का एक और बड़ा घातक तरीक़ा है और वह तरीक़ा है कहानी पाठ। कहानी पाठ के दौरान श्रोता साँस रोक कर कहानीकार द्वारा पलटे जा रहे पृष्ठों के समाप्त होने की प्रतीक्षा करता रहता है। यदि आप श्रोताओं में बैठे हों कभी तो आपने भी कानाफूसी सुनी या की होगी ही कि -अभी तो पाँच पृष्ठ बाक़ी दिख रहे हैं। कहानी पाठ का औचित्य मुझे आज तक समझ में नहीं आया। कहानी पाठक के रूप में पढ़ी जाने वाली विधा है और कविता श्रोता के रूप में सुनी जाने वाली, लेकिन इन दिनों हो यह रहा है कि हमने दोनों को एक-दूसरे से अदल-बदल कर दिया है। कहानी पाठ में जब तक पढ़ने वाला कहानीकार बहुत-बहुत अच्छा प्रस्तोता भी न हो, तब तक कहानी पाठ एक उबाऊ प्रक्रिया ही बन कर रह जाता है। सपाट तरीक़े से पढ़कर श्रोता को कहानी सुनाने से बेहतर है कि श्रोता को माफ़ ही कर दिया जाए। एक ऐसा कार्यक्रम जिसमें श्रोता हर घड़ी समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा में लगा हो उसे क्यों किया जाए भला ? इसके स्थान पर अंश के पाठ की व्यवस्था होनी चाहिए। दोस्तो, क्या हम इस सब को बदल नहीं सकते ? क्या हम साहित्यिक आयोजनों में समय के अनुशासन को लागू नहीं कर सकते। क्या हम कार्यक्रम की निर्धारित समय सीमा में भाषण देकर माइक को छोड़ नहीं सकते? यह सब इसलिए करना ज़रूरी है कि यदि ऐसा हो जाएगा, तो एक बार फिर से श्रोता साहित्यिक कार्यक्रमों की तरफ़ लौटने लगेगा। यदि आपने कोई कार्यक्रम डेढ़ घंटे का रखा है तो कोशिश करें कि वह निर्धारित समय सीमा में ही समाप्त हो, डेढ़ से बढ़कर पौने दो घंटे भी क्यों किए जाएँ भला ? हम साहित्यकार हैं, हम ही तो दूसरों के लिए दिशा तय करते हैं, ऐसे में यदि हम ही समय की सीमा का अनुशासन नहीं मानेंगे, तो दूसरों से क्या उम्मीद कर सकते हैं। यदि समय के अनुशासन का पालन साहित्य समाज करने लगे, तो रूठे हुए श्रोता का विश्वास शायद एक बार फिर से कार्यक्रमों के प्रति जाग सके। **सादर आपका ही,**

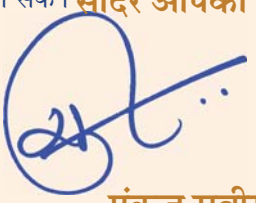

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

भोपाल मध्यप्रदेश के राज्य संग्रहालय के सभागार में 17 मार्च 2019 को आयोजित "ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका-शिवना प्रकाशन साहित्य समागम तथा सम्मान समारोह" की कुछ झलकियाँ

प्रथम सत्र : सम्मानित रचनाकारों पर वक्तव्य प्रदान करते श्री बलराम गुमाश्ता, सुश्री गीताश्री तथा श्री समीर यादव

प्रथम सत्र : सम्मानित रचनाकारों पर वक्तव्य प्रदान करते श्री विनय उपाध्याय, डॉ. गरिमा संजय दुबे तथा सत्र के मुख्य अतिथि श्री महेश कटारे

प्रथम सत्र : अध्यक्ष डॉ. उर्मिला शिरीष का उद्बोधन, तृतीय सत्र : अध्यक्ष डॉ. प्रेम जनमेजय तथा मुख्य अतिथि श्री शशिकांत यादव का उद्बोधन

द्वितीय सत्र : सुधा ओम ढींगरा का स्वागत भाषण, अध्यक्ष श्री संतोष चौबे का उद्बोधन, मुख्य अतिथि श्री पलाश सुरजन का उद्बोधन

चतुर्थ सत्र : "कविता की एक शाम लहरों के नाम" में भोपाल के बड़ा तालाब में मध्य प्रदेश पर्यटन विभाग के क्रूज़ पर कविता पाठ के दौरान कार्यक्रम अध्यक्ष श्री नीरज गोस्वामी, कार्यक्रम का संचालन करते श्री शशिकांत यादव तथा क्रूज़ पर कविता का आनंद लेते श्रोतागण।

Vibhom Swar ● Quarterly ● APRIL-JUNE 2019 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

आष्टा के कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र की बालिकाओं हेतु आयोजित बालिका सशक्तिकरण कार्यक्रम में बालिकाओं को संबोधित करते ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन के अध्यक्ष डॉ. ओम ढींगरा, उपाध्यक्ष डॉ. सुधा ओम ढींगरा।

सीहोर के कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र की बालिकाओं हेतु आयोजित बालिका सशक्तिकरण कार्यक्रम में बालिकाओं को संबोधित करते ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन के अध्यक्ष डॉ. ओम ढींगरा, उपाध्यक्ष डॉ. सुधा ओम ढींगरा।

सीहोर के कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र की बालिकाओं हेतु आयोजित बालिका सशक्तिकरण कार्यक्रम में बालिकाओं को संबोधित करते हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकारगण सुश्री मनीषा कुलश्रेष्ठ, सुश्री पारुल सिंह और डॉ. प्रेम जनमेजय।

सीहोर के कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र की बालिकाओं हेतु आयोजित बालिका सशक्तिकरण कार्यक्रम में बालिकाओं को संबोधित करते फ़िल्म निर्देशक श्री इरफ़ान ख़ान, ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन के समन्वयक श्री प्रमोद शर्मा और पूर्व विधायक श्री शैलेन्द्र पटेल।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।